'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

मार्गशीर्ष-पौष २०४३ वर्ष ४५
दिसम्बर ८६-जनवरी ८७ संख्या ९-१०

ईस्वी नव-वर्ष १९८७ की शुभ-कामनायें

उद्घाटन

स्वस्ति-वाचन

प्रदर्शनी

शाक्त सम्मेलन १९८६ पटना

वर्ष ४५ : मार्गशीर्ष-पौष २०४३ वि०—दिसम्बर ८६-जनवरी १९८७ : सं० ९–१०

१ पटना में शाक्त साहित्य-प्रदर्शनी एवं शाक्त सम्मेलन १

२ पटना में शाक्त-सम्मेलन की गोष्ठियां : श्री ठाकुर अमर सिंह, प्रयाग ६

३ पारायण-विधि ('कौल-कल्पतरु' चण्डी वर्ष ४५ : पञ्चम विशिष्ट साहित्य) ९

४ दक्षिण भारत में चण्डी-उपासना : श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अयङ्गार, श्रीरङ्गम् (तमिलनाडु) १७

५ 'प्राधानिक रहस्य' की तात्विक समीक्षा : डा० जवाहरप्रसाद सिंह, दरभङ्गा, (बिहार) २०

६ बगला-सम्बन्धी अनुसन्धानात्मक विवेचन : पं० रमेशचन्द्र शर्मा, किशनगढ़, अजमेर (राजस्थान) २३

७ वैभव-प्रतीक शक्ति-उपासना : पं० भँवरलाल जोशी, सोकर (राजस्थान) २७

८ कौलिक-साधना : डा० अष्टभुजाप्रसाद पाण्डेय, भदैनी, वाराणसी (उ० प्र०) २९

९ जिज्ञासु के पत्र : श्री भरवानन्द नाथ, १०८ चकरा घाट, सागर (म. प्र.) ३१

१० कैथोलिक पीठ 'वैटिकन' में भगवान् शिव : श्रीठाकुर अमर सिंह, प्रयाग ३२

११ बाबाश्री चरितामृत (लेख-माला) : गताङ्कों से प्रकाशित धारावाहिक साहित्य ६५-७२

सूचना

'चण्डी' वर्ष ४५ के सामान्य अङ्क १–२, ३–४, ५–६, ७–८ व ९–१० (दिसम्बर-जनवरी ८७) सेवा में भेजे गए हैं। फरवरी ८७ में अन्तिम सामान्य अङ्क ११-१२ (फरवरी-मार्च ८७) भेजा जायेगा। यदि आपको अभी तक भेजे गए ५ अङ्कों में से कोई अङ्क प्राप्त न हुआ हो, तो लिखियेगा। उस अङ्क की दूसरी प्रति हम भेजने का प्रबन्ध करेंगे।

'चण्डी' वर्ष ४५ में प्रकाशित होनेवाले दो अतिरिक्त विशेषाङ्क—**१ हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र, भाग ३ तथा २ दश-महा-विद्या-स्तोत्र संग्रह** (भाग ३ : श्री श्रीविद्या-स्तव-मञ्जरी) **मार्च ८७** में रजिस्ट्री शुल्क (६१-०० रु०) भेजनेवाले बन्धुओं की सेवा में रजिस्ट्री द्वारा तथा वी० पी० शुल्क (२१-०० रु०) भेजनेवाले बन्धुओं की सेवा में ४३-०० रु० को वी० पी० पी० द्वारा भेजे जायेंगे। डाकव्यय की अत्यधिक वृद्धि के कारण दोनों विशेषाङ्क अब एक साथ मार्च ८७ में भेजे जायेंगे।

इस अङ्क में प्रकाशित चित्र

(१) परम पूज्य श्री १००८ स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती

'चण्डी' के गताङ्क में 'श्रीछाया-पीठम्' और उसके संस्थापक पूज्य श्री १००८ स्वामी अद्वयानन्द सरस्वती जी का परिचय प्रकाशित हो चुका है। आपका जन्म १९ नवम्बर, सन् १९१० को हुआ था। ७६ वर्षीय वयोवृद्ध पूज्य श्री स्वामी जी का रङ्गीन चित्र इस अङ्क में है। इससे 'चण्डी' के पाठक आपके भव्य स्वरूप के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे।

(२) श्री एन० वी० मेहता द्वारा दक्षिण बद्रिकाश्रम में स्थापित माँ गायत्री का मन्दिर

'चण्डी' वर्ष ४४, अङ्क ५-७ में दक्षिण बद्रिकाश्रम, पो० चांदोद, जिला बडोदरा में १८ नवम्बर १९८५ को श्रीगायत्री माता जी के नूतन मन्दिर के प्राण-प्रतिष्ठा-महोत्सव की सूचना दी गई थी। इस मन्दिर की स्थापना के द्वितीय वर्ष के अवसर पर हम इस अङ्क में एक चित्र दे रहे हैं। आशा है कि इससे 'चण्डो' के पाठकों को विशेष प्रेरणा प्राप्त होगी।

दक्षिण बद्रिकाश्रम, पो० चांदोद, जिला वड़ोदरा (गुजरात)
में
भगवती गायत्री का मन्दिर

पटना में शाक्त साहित्य प्रदर्शनी एवं शाक्त सम्मेलन

देश-व्यापी 'शाक्त-सङ्गठन' की दिशा में पुनः प्रथम प्रयास का श्रीगणेश पूर्व-घोषित कार्य-क्रम के अनुसार गुरुवार दिनांक १३ नवम्बर १९८६ को बिहार प्रदेश की राजधानी पटना के प्रशस्त कङ्कण-बाग मार्ग पर अवस्थित भव्य जयसरमिन होटल के बाह्य कक्ष में परम पूज्या श्री माई जी की अहैतुकी दया से अकल्पित ढंग से बहुत ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

अकल्पित ढंग से उक्त प्रयास के सम्पन्न होने की बात को उक्त अवसर पर उपस्थित सभी बन्धुओं ने गहराई से अनुभव किया। उस अनुभूति को शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। फिर भी कुछ तथ्यों पर यदि पाठक बन्धु ध्यान देकर विचार करने की कृपा करेंगे, तो वे भी उसे बहुत कुछ हृदयङ्गम कर सकेंगे—

(१) पहली बात यह है कि 'अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन' की स्थापना ४५ वर्ष पूर्व सन् १९४२ में हुई, उस समय उसका एक स्थूल स्वरूप प्रत्यक्ष था किन्तु क्रमशः वह सूक्ष्म रूप ग्रहण करता गया और इधर केवल 'चण्डी' पत्रिका एवं 'कल्याण मंदिर प्रकाशन' के रूप में उसका अस्तित्व शेष रह गया था।

(२) 'सम्मेलन' के अस्तित्व-सम्बन्धी उक्त बात हम सभी को निरन्तर उद्विग्न बनाए रहती थी किन्तु हम निरुपाय थे क्योंकि 'सङ्गठन'-कार्य के लिए न तो हमारे पास साधन थे और न ही उसकी क्षमता थी किन्तु परम पूज्या प्रातःस्मरणीया श्री माई जी की अन्तःप्रेरणा से श्री पं० गोविन्दशरण उपाध्याय जी (उपाध्यक्ष अ० भा० शाक्त सम्मेलन) ने अकस्मात् यह प्रस्ताव हमारे समक्ष रखने की कृपा की कि 'यदि दिल्ली के अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक-मेले में 'चण्डी' और तन्त्र-साहित्य का स्टाल सफल हो सकता है, तो क्यों न 'तन्त्र एवं शाक्त साहित्य की प्रदर्शनी' का आयोजन पटना में किया जाय?' इस कथन के साथ ही आपने अपने 'जयसरमिन होटल' में सब प्रकार की सुविधायें उपलब्ध कराने का आश्वासन भी दिया। अचानक ही विचार उठा कि क्यों न प्रदर्शनी के साथ ही 'सम्मेलन' को भी पुनः वास्तविक रूप में लाने का प्रयत्न किया जाय? प्रस्ताव और विचार दोनों उत्तम थे किन्तु उनका कार्यान्वयन हमारे लिए सरल नहीं था।

(३) बहुत कुछ ऊहापोह के बाद, अपने सीमित साधनों को ध्यान में रखते हुए हमने केवल बिहार-निवासी शाक्त-बन्धुओं के सङ्गठन को अपना लक्ष्य बनाया और तदनुरूप ही योजना बनाकर 'चण्डी' के श्रावण-भाद्रपद अंक में विज्ञप्ति प्रकाशित कर दी गई।

(४) विज्ञप्ति के प्रकाशित होते ही न केवल बिहार से, अपितु देश के अन्य प्रदेशों से भी अत्यन्त उत्साह-भरे पत्र आने लगे और 'सम्मेलन' को व्यापक रूप देने का आग्रह किया जाने लगा। उदाहरण के लिए भुवनेश्वर (उड़ीसा) से श्रीमहामेधानन्दनाथ पं० डी० पटनायक शास्त्री जी ने प्रस्ताव किया कि तामिलनाडु के विलक्षण 'श्रीछायापीठं' के वयोवृद्ध श्री गुरुदेव एवं उक्त पीठ के श्री श्रीयन्त्रार्चन में निष्णात योगिनियों को उक्त अवसर पर पटना आमन्त्रित किया जाय। यही नहीं, आपने यह भी

आश्वासन दिया कि 'श्री छाया-पीठं' के श्रीगुरुदेव एवं योगिनियों को पटना आने में कोई असुविधा नहीं होगी। किन्तु हम लोगों ने अनुभव किया कि इस प्रकार के वृहद् आयोजन को सँभालना हमारे लिए सम्भव न होगा। इसी प्रकार कुछ बन्धुओं ने यह आग्रह किया कि देश के जाने-माने साधकों को आमन्त्रित किया जाय, जिससे उनके प्रवचनों से लोगों को उद्‌बोधन मिल सके। कुछ बन्धुओं ने यह भी प्रस्ताव किया कि इस अवसर पर श्रीलक्ष-चण्डी-यज्ञ जैसा कोई अनुष्ठान किया जाय किन्तु ये सभी प्रस्ताव उपयोगी होते हुए भी हमारे द्वारा क्रियान्वित किए जाने सम्भव नहीं थे। अतः इन सबको भविष्य के लिए स्थगित रखने और उक्त आयोजन को यथा-सम्भव सीमित रूप में ही करने का निश्चय किया गया। इसी उद्देश्य से १५-१६ नवम्बर को 'सम्मेलन' की गोष्ठियों के लिए प्रवेश-शुल्क निर्धारित किया गया, जिससे केवल वही बन्धु आने का कष्ट करें, जो वास्तव में 'सङ्गठन' के लिए उत्सुक हों।

(५) अन्य प्रदेशों के बन्धुओं से हमने आग्रह किया कि वे पटना न आकर केवल अपने प्रस्तावादि विचारार्थ भेजें और जब उनके प्रदेश में उक्त प्रकार का आयोजन किया जाय, तब उसमें उपस्थित होकर 'संगठन'-कार्य में अपना सहयोग प्रदान करें क्योंकि उनके ठहरने आदि की व्यवस्था करना हमारे लिए सम्भव न होगा। इस पर अनेक बंधुओं ने अनुरोध किया कि अन्य प्रदेशों के बन्धुओं के पटना आने पर प्रतिबन्ध न लगाया जाय, अपितु यदि कोई बन्धु आना ही चाहें, तो उनके ठहरने आदि की यथा-सम्भव व्यवस्था अवश्य की जाय। लाचार होकर हमें 'जयसरमिन होटल' की शरण लेनी पड़ी। उसके उदार-मना स्वामियों ने उचित शुल्क पर दो दिन ठहरने और खान-पान की सुविधा सहर्ष हमें सुलभ करा दी, जिसकी सूचना इच्छुक बन्धुओं को दे दी गई।

उक्त पाँच विन्दुओं से स्पष्ट है कि हम किस दुरूह परिस्थिति में थे। इसके सिवा सम्मेलन के अवसर पर जो 'स्मारिका' प्रकाशित करने का विचार किया गया था, उसके लिए आवश्यक सामग्री बड़ी मन्द गति से मिल रही थी। यद्यपि आयोजन को सितम्बर के स्थान पर नवम्बर में करने का निश्चय किया गया था, जिससे 'स्मारिका' तैयार करने के लिए पर्याप्त समय मिल सके किन्तु अनुमान होने लगा कि वांछित सामग्री इतने शीघ्र नहीं मिल सकेगी। बाध्य होकर 'स्मारिका' को खण्डशः प्रकाशित करने का निश्चय करना पड़ा।

आयोजन के एक सप्ताह पूर्व अप्रत्याशित ढंग से पता चला कि 'अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन' के संस्थापक अध्यक्ष माननीय न्यायमूर्ति पं० शिवनाथ जी काटजू की भतीजी का विवाह १७ नवम्बर को होगा, जिसके फल-स्वरूप आप पटना नहीं चल सकेंगे। यह एक भारी विघ्न था किन्तु अब हम पीछे नहीं हट सकते थे। अतः श्रीजगदम्बा का स्मरण कर और कौल-जगत् की चार ब्रह्मीभूत विभूतियों—'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी, 'गुप्तावतार' बाबा श्री, 'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी एवं परम पूज्या श्रीमाई जी—की दिव्य दया के भरोसे इस महद् अभियान पर हम आगे बढ़ चले।

'चण्डी-कार्यालय' प्रयाग से सर्वश्री ऋतशील शर्मा, सतीशकुमार उपाध्याय, ठाकुर अमर सिंह और 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल (मन्त्री अ० भा० शाक्त सम्मेलन) दिनांक ११-११-८६ को रात्रि में तूफान मेल से चलकर १२-११-८६ को प्रातः पटना के 'जयसरमिन होटल' में पहुँच गए। होटल के प्रबन्धक श्रीमान् स्वर्गवीर सिंह जी ने, जो ७१ वर्षीय वयोवृद्ध हैं, अति उत्साह के साथ रात्रि में दो बजे तक जगकर होटल के कर्मचारियों और कुशल कारीगरों की सहायता से प्रदर्शनी-कक्ष को पेण्ट द्वारा सर्वथा नवीन-सा बनवा दिया और उद्‌घाटन-दिवस अर्थात् अगले ही दिन दिनाङ्क १३-११-८६ को प्रातः ६ बजे तक उक्त बन्धुओं ने होटल के कर्मचारियों के सहयोग से 'तन्त्र एवं शाक्त साहित्य प्रदर्शनी' को

उत्तम ढंग से सजा दिया। मुख्य द्वार पर 'सङ्घे शक्तिः कलौ युगे' से युक्त अनेक आकर्षक नाम-पट लग गए। प्रदर्शनी-कक्ष के द्वार पर सर्वतोभद्र-मण्डल से अलंकृत पीठ पर विधिवत् तण्डुल-शराव, आम्र-पल्लव एवं दीप-युक्त सुचित्रित कलश पुष्प-मालाओं से सुसज्जित स्थापित हो गया। प्रदर्शनी-कक्ष भी उच्चाधार-पीठ पर पुष्प-गुच्छों से समलंकृत घृत-दीप-दण्ड द्वारा सुशोभित कर दिया गया।

निर्धारित समय पर सशक्ति शिव-स्वरूप श्री पं० गोविन्दशरण जी उपाध्याय के पधारने पर 'कुल-भूषण' श्री पं० रमादत्त शुक्ल द्वारा सस्वर स्वस्त्ययन एवं मङ्गल-पाठ किया गया और सर्व-सौभाग्य-वती श्रीमती सन्ध्या उपाध्याय ने अपने कर-कमलों से कलशस्थ दीप को प्रज्वलित किया। कलश-वन्दना के पश्चात् आपने प्रदर्शनी-कक्ष के घृत दीप को प्रज्वलित कर 'बिहार में शक्ति-साधना' शीर्षक स्मारिका का विमोचन करते हुए 'तन्त्र एवं शाक्त-साहित्य-प्रदर्शनी' का उद्घाटन किया। यह सारा दृश्य इतना अलौकिक था कि उपस्थित सभी दर्शक बन्धु मन्त्र-मुग्ध से हो उठे। प्रदर्शनी-कक्ष का परिसर दश महा-विद्याओं, भगवती श्री दुर्गा एवं श्री श्रीयन्त्र के बहुरङ्गी वृहदाकार भव्य चित्रों से देदीप्यमान था और 'चण्डी' की फाइलें तथा कल्याण मन्दिर प्रकाशन की नयनाभिराम प्रामाणिक पुस्तकों का अवलोकन करने के लिए सभी समुत्सुक थे।

सर्व-सौभाग्यवती श्रीमती सन्ध्या उपाध्याय ने प्रदर्शनी में रखी पुस्तकों में से कुछ पुस्तकों को चुनकर उन्हें क्रय किया और इस प्रकार आपने उद्घाटन-कार्य के दायित्व का सुचारु रूप से निर्वाह किया, जिससे उपस्थित सभी दर्शकों को बड़ा उद्बोधन मिला और वे अत्यन्त उल्लास एवं आनन्दपूर्वक एक-एक पुस्तक को देखने तथा अपने लिए छाँटने लगे।

अपराह्न में प्रयाग से 'चण्डी' परिवार के दो अन्य प्रमुख सदस्य सर्वश्री अवधेशनारायण शुक्ल और चैतन्य शर्मा भी आ गये, जिससे प्रदर्शनी का कार्य रात्रि के ११ बजे तक बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न होता रहा।

अगले दिन १४ नवम्बर १९८६ को केवल प्रदर्शनी का ही कार्य था। साथ ही बिहार के सुदूर अंचलों और देश के अन्य स्थानों से आनेवाले बन्धुओं से मिलने तथा परिचय प्राप्त करने का कार्यक्रम था। बम्बई (महाराष्ट्र) से श्री जे० नाथ, गंजाम (उड़ीसा) से पं० धरणीधर मिश्र और उनका परिवार, ग्वालियर (म० प्र०) से पं० श्रीकृष्ण श्रोत्रिय, भोपाल (म० प्र०) से डा० रमेश वाज-पेयी, सतना (म. प्र.) से श्री जगन्नाथ सिंह, वाराणसी (उ. प्र.) से त्रिपाठी पं. रङ्गनाथ राकेश और अप्रत्याशित रूप से समागत—देश-विदेश में भ्रमण-शील धर्माचार्य परम पूज्य श्री स्वामी अखिलेश जी के अकल्पित शुभागमन से 'सम्मेलन' का अखिल भारतीय स्वरूप सहसा सहज ही प्रत्यक्ष हो उठा।

दिनांक १५ नवम्बर को अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन एवं शाक्त-साधना पीठ के तत्वावधान में बिहार शाक्त मण्डल की स्थापना हेतु प्रथम गोष्ठी प्रातः ११ बजे प्रारम्भ हुई। इस गोष्ठी के लिये जयसरमिन होटल की चौथी मंजिल पर स्थित विशाल कक्ष में बड़ी सुन्दर व्यवस्था हो गई, जिसकी हमें तनिक भी आशा नहीं थी। हमारा अनुमान था कि अधिक से अधिक २०-२५ बन्धु एकत्र होंगे और हम लोग एक सामान्य गोष्ठी में बैठकर संगठन-सम्बन्धी विचार-विमर्श कर लेंगे। इसी अनुमान के अनुसार हमने किसी प्रकार के मंगलाचरण, भाषण, प्रवचनादि की कल्पना नहीं की थी और न ही तीव्र-घोषक (माइक) आदि की आवश्यकता समझी थी किन्तु अनपेक्षित रूप से एक भव्य मंच, मंच पर अध्यक्ष आदि पाँच प्रमुख व्यक्तियों के लिये विशिष्ट और श्रोताओं के लिये भी उत्तम कुर्सियों के साथ-साथ तीव्र-घोषक की भी अनायास ही व्यवस्था हो गई।

इस प्रथम गोष्ठी के लिये आगन्तुक बन्धुओं के परिचय के आदान-प्रदान मात्र का ही कार्यक्रम रखा गया था किन्तु पटना के एक युवा-बन्धु श्री कुमार उमेशचन्द्र ने ललित स्वर में गणेश-वन्दना की और वाराणसी के त्रिपाठी पं० रङ्गनाथ राकेश ने शङ्कराचार्य-कृत भवानी-स्तुति का सस्वर पाठ किया। इस परिचय-संगोष्ठी की अध्यक्षता श्री पं० अमरनाथ जी झा कर रहे थे और विशिष्ट अतिथियों के रूप में दो विभूतियों की कृपा अयाचित रूप से सुलभ हो गईं। इनमें से एक तो सहरसा (बिहार) के विशिष्ट विद्वान् साधक कौलाचार्य पं० कृष्णदत्त जी झा थे और दूसरे थे विश्व-पर्यटक धर्माचार्य पूज्य श्री स्वामी अखिलेश जी।

पटना के पं० गंगाधरजी पाण्डेय संगोष्ठी का कार्य-संचालन कर रहे थे। मंच पर अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन के उपाध्यक्ष पं० गोविन्दशरण जी उपाध्याय, मन्त्री 'कुलभूषण' श्री पण्डित रमादत्त शुक्ल और पूज्य स्वामी जी विराजमान थे। ५० से ऊपर शाक्त बन्धु दत्त-चित्त होकर वक्ताओं की पीयूष-वाणी सुनने को समुत्सुक थे। सबसे बड़ी विशेषता इस प्रथम गोष्ठी की यह थी कि अप्रत्याशित रूप से गंजाम (उड़ीसा) से आईं दो सर्व-सौभाग्यवती महिलाओं के साथ सर्व-सौभाग्यवती श्रीमती सन्ध्या उपाध्याय आयुष्मती कु० मिनी उपाध्याय सहित परिचय-संगोष्ठी की शोभा बढ़ा रही थीं। उधर कक्ष की दीवार पर भगवती काली, भगवती तारा, भगवती वगलामुखी और भगवती श्री बाला त्रिपुर-सुन्दरी के भव्य ध्यान-सम्मत चित्रों (पेंटिंग्स) की आभा से उपस्थित सभी महानुभाव मुग्ध बैठे थे तथा इधर मंच के सामने संलग्न श्री श्री यन्त्र का भव्य चित्र निरन्तर सभी दृष्टियों को आकृष्ट कर रहा था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महाविद्या-चतुष्टय के सभी चित्र पिछले पन्द्रह दिनों के अन्दर ही अत्यन्त मनोयोग से सर्व-सौभाग्यवती श्रीमती सुधा शर्मा ने अपने कर-कमलों से प्रस्तुत किए थे, जिनके बिना प्रदर्शनी एवं सम्मेलन-कक्ष की ऐसी शोभा कथमपि सम्भव न थी। कितने ही लोगों ने तो इन चित्रों को अपने लिये माँग तक प्रस्तुत कर दी और हमें यह आश्वासन देना पड़ा कि जो बन्धु उस प्रकार के चित्र चाहेंगे, उन्हें उनके वांछित चित्र 'चण्डी-कार्यालय' द्वारा उपलब्ध कराने का प्रयास किया जायेगा।

इसी बीच में परिचय-संगोष्ठी के परिचालक श्री गंगाधर पाण्डेय जी के संकेतानुसार 'कुल-भूषण' श्री शुक्ल जी 'सम्मेलन' के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुये भाव-विह्वल स्वर से निवेदन कर रहे थे कि 'पिछले चालीस वर्षों से भी अधिक समय से अ० भा० शाक्त-सम्मेलन का अस्तित्व मात्र हमारे आपके हृदयों में ही रहा है। आज वह तीर्थराज प्रयाग में तथा शक्ति-साधना के पोषक मिथिला प्रदेश की राजधानी पटना में मूर्त रूप ग्रहण करता दिखाई दे रहा है। आज की संगोष्ठी में बिहार प्रदेश सम्मेलन का संगठन किस प्रकार हो, इस पर अ० भा० शाक्त-सम्मेलन के उपाध्यक्ष श्री पं० गोविन्दशरण जी उपाध्याय प्रकाश डालेंगे।'

श्री उपाध्याय जी ने वर्तमान युग में सङ्गठन की अनिवार्यता पर प्रकाश डालते हुये पटना और बिहार के उपस्थित बन्धुओं का आह्वान किया कि इस अवसर पर वे बिहार शाक्त-सम्मेलन की नींव डालने का प्रयास करें। तभी बिहार के सभी जनपदों, नगरों और गाँवों में भी शाक्त-मण्डलों की स्थापना हो सकेगी। इस प्रकार संगठन के सुदृढ़ होने से बिहार के शक्ति-पीठों, देवी-मन्दिरों की समुचित व्यवस्था हो सकेगी, शाक्त-साधकों और आचार्यों को प्रकाश में लाया जा सकेगा, शाक्त-साधना के जिज्ञासुओं को सद्‌गुरुओं की प्राप्ति हो सकेगी, दीक्षा-अभिषेक-पूर्णाभिषेक जैसे संस्कार सबको सुलभ हो सकेंगे और शाक्त-साधना के अमित प्रभावों से बिहार प्रदेश ही नहीं, सारा देश और विश्व तक लाभ उठा सकेगा।

उपाध्याय जी के वक्तव्य के बाद श्री गङ्गाधर पाण्डेय ने उपस्थित बन्धुओं से अपना परिचय देने का अनुरोध किया, जिस पर सभी बन्धुओं ने एक-एक कर मंच पर आकर दूरभाष द्वारा अपने नाम और स्थान की सूचना प्रदान की।

अन्त में 'परिचय-संगोष्ठी' की समाप्ति के पूर्व श्री उपाध्याय जी ने विशिष्ट अतिथि-महोदय श्री स्वामी जी का स्वागत करते हुये उनसे उद्बोधन हेतु अनुरोध किया।

परम पूज्य श्री स्वामी अखिलेश जी का भव्य तेजस्वी स्वरूप अभी हाल ही की दुर्घटना से त्रस्त शरीर के बैशाखी पर आश्रित होने पर भी चका-चौंध करनेवाला था और जब वे बैठे-बैठे ही बोलने के अनुरोध को टाल कर उठ खड़े हुये, तो सारा श्रोता-समाज चकित रह गया और जब उनकी मधुर लालित्य-भरी वाणी उस विशाल कक्ष में गूँजने लगी, तो लोग चित्र-लिखे से रह गये। उनके प्रबुद्ध प्रवचन के फलस्वरूप लोग सङ्गठन की लालसा से उद्दीप्त हो उठे और जब उन्होंने श्री जगदम्बा के ललित कीर्तन के साथ प्रवचन का समाहार किया, तो उनके साथ-साथ श्रोताओं ने उच्च स्वर में अपने-अपने कण्ठ का भी योगदान इतने संयम और ताल के साथ किया कि प्रतीत हुआ मानो कोई सुनियोजित कीर्तन हो रहा हो। फल यह हुआ कि इस परिचय-संगोष्ठी के अध्यक्ष श्री पं० अमरकान्त जी झा ने जब अपने समापन भाषण द्वारा उपस्थित बन्धुओं को संगठन हेतु आमंत्रित किया, तो सभी एक मत से तत्पर हो उठे और परिचालक महोदय श्री गङ्गाधर पाण्डेय जी की घोषणा के अनुसार सायंकालीन द्वितीय गोष्ठी की प्रतीक्षा में हृदय की आतुरता को दबाये हुये मध्याह्न भोजनादि के लिये एक दूसरे के साथ यथा-स्थान के लिये चल दिये।

अपराह्न ५ बजे की गोष्ठी में बिहार में शाक्त-सङ्गठन-सम्बन्धी कार्यवाही होनी थी किन्तु मंच पर विराजमान दो विशिष्ट अतिथि पूज्य स्वामी जी एवं पण्डित-प्रवर झा जी के प्रवचनों को सुनने के लिये श्रोता-गण बड़े उत्सुक थे। इस गोष्ठी के अध्यक्ष प्रो० चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु' जी भी पटना के लोक-प्रिय वक्ता थे। अतः जैसे ही गोष्ठी के समारम्भ में पं० सतीशचन्द्र उपाध्याय ने रात्रि-सूक्त का पाठ करके सङ्गठन के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करने हेतु लोगों का आवाहन किया कि श्रोताओं में से उठकर पं० चन्द्रिकाप्रसाद दुबे ने आकर दूरभाष पर अपना परिचय दिया कि मैं 'भैरव-कुण्ड, विन्ध्याचल के प्रसिद्ध स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती का प्रपौत्र हूँ' और कौल-धर्म पर भाषण आरम्भ कर दिया। उनके भाषण की समाप्ति पर उपाध्यक्ष श्री उपाध्याय जी ने विशिष्ट अतिथि श्री झा जी से उद्बोधन हेतु अनुरोध किया।

कौलाचार्य पं० कृष्णदत्त जी झा ने यह घोषित कर सबको चकित कर दिया कि अन्य सभी धर्म यहाँ से जाने—मृत्यु की बात बताते हैं, किन्तु तन्त्रोक्त धर्म यहाँ से जाकर पुनः वापस लौटने—पुनर्जन्म की बात बताता है। इस रहस्य की पुष्टि अन्तर्मातृका न्यास के:सृष्टि, स्थिति, संहार-न्यास करने के बाद पुनः सृष्टि न्यास करने की अद्भुत व्यवस्था से होती है। शाक्त-साधना के सम्बन्ध में अनुसन्धानात्मक प्रायोगिक शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुये आपने शाक्त-साधना के त्रिस्तरीय पाठ्यक्रम को शीघ्र ही प्रस्तुत करने का अनूठा आश्वासन भी दिया।

झा जी के प्रवचन के बाद गोष्ठी के अध्यक्ष निशान्तकेतु जी ने विद्वत्तापूर्ण भाषण किया और उसके बाद स्वामी जी का जो धारा-प्रवाह प्रवचन प्रारम्भ हुआ, उससे सभी लोग मन्त्र-मुग्ध रह गये। प्रवचन के अन्त में उनके द्वारा पूर्ववत् श्री जगदम्बा की प्रार्थना गाई गई और श्रोताओं ने उनका हृदय से साथ दिया।

(शेष पृष्ठ ६ के अधोभाग में)

पटना में शाक्त-सम्मेलन की गोष्ठियाँ

प्रथम सत्र (परिचय-संगोष्ठी) : १५ नवम्बर, १९८६ : पूर्वाह्न ११ बजे

गोष्ठी-सञ्चालक श्री पं० गङ्गाधर पाण्डेय के आवाहन पर श्री कुमार उमेशचन्द्र द्वारा श्रीगणेश-वन्दना और श्री पं० रङ्गनाथ त्रिपाठी 'राकेश' द्वारा जगद्गुरु शङ्कराचार्य-कृत भवानी स्तुति से यह सत्र श्री पं० अमरनाथ झा की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। लगभग ४५ शाक्त बन्धुओं, साधकों और विद्वानों के समक्ष मञ्च पर श्री पं० गोविन्दशरण उपाध्याय, उपाध्यक्ष अ० भा० शाक्त सम्मेलन, 'कुल-भूषण' श्री पं० रमादत्त शुक्ल, मन्त्री अ० भा० शाक्त सम्मेलन एवं विशिष्ट अतिथि पूज्य श्रीस्वामी अखिलेशजी मंच पर विराजमान थे।

श्री शुक्ल जी ने समस्त शाक्त-बन्धुओं तथा उपस्थित जगदम्बा-स्वरूपा महिलाओं एवं कुमारी देवी का स्वागत करते हुए अपने प्रारम्भिक भाषण में लगभग ५० वर्ष पूर्व न्यायमूर्ति श्री पं० शिवनाथ जी काटजू की अध्यक्षता में तीर्थराज प्रयाग में अ० भा० शाक्त सम्मेलन की संस्थापना का विवरण बताते हुए वयोवृद्ध श्री काटजू जी (अधुना अध्यक्ष विश्व हिन्दू परिषद्) के यशस्वी जीवन का परिचय दिया। सुदूर अमेरिका में अति गोपनीय रूप से स्थापित 'विश्व तन्त्र संघ' का रहस्योद्घाटन आपने किस कुशलता और तत्परता के साथ किया, इस रोमाञ्चक शोध का उल्लेख करते हुए शुक्ल जी ने शाक्त धर्म की महत्ता पर बल देते हुए उसके वैज्ञानिक एवं क्रियात्मक पक्ष पर विहङ्गम प्रकाश डाला। फिर उन्होंने श्री पं० गोविन्दशरण उपाध्याय जी का उल्लेख करते हुए आपके श्रेष्ठ साधक-स्वरूप का परिचय दिया और बताया कि एकमात्र आपके ही सहयोग से पटना का यह अभूतपूर्व आयोजन सम्पन्न हो रहा है।

उपाध्याय जी के प्रति कृतज्ञता और साधुवाद व्यक्त करते हुए शुक्लजी ने मणिपुरवासी अपने पूज्य पिता 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल के सम्बन्ध में उल्लेख किया कि किस प्रकार 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के सम्पादक के रूप में साहित्य-सेवा में व्यस्त होते हुए भी आप शाक्त-साधना में केवल तत्पर ही नहीं रहे, अपितु श्रीमान् काटजू जी के क्रियात्मक सहयोग से 'चण्डी' जैसी अनूठी पत्रिका

(पृष्ठ ५ का शेषांश)

इस प्रकार प्रथम दिन की दोनों गोष्ठियाँ अकल्पित रूप से बड़े धूमधाम के साथ सम्पन्न तो हुईं किन्तु हमारा जो मुख्य उद्देश्य था—शाक्त-सङ्गठन का सूत्रपात—उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं हो सका। फलतः दूरभाष द्वारा जाते-जाते लोगों को सूचित किया गया कि अगले दिन की गोष्ठियों में भाषण, प्रवचनादि के कार्यक्रम नहीं होंगे, केवल सङ्गठन-सम्बन्धी वार्ता ही होगी।

१६ नवम्बर ८६ को सम्मेलन-कक्ष के सभा-मंच का रूप बदलकर गोलमेज सभा का रूप दिया गया। गोलाकार कुर्सियाँ रखी गईं और बीच में दूरभाष रखा गया और लोगों से अनुरोध किया गया कि प्रत्येक बन्धु केवल दो मिनट का समय लें और मात्र सङ्गठन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करें। इस व्यवस्था के फलस्वरूप इस दिन की दो गोष्ठियों में व्यावहारिक ढङ्ग से विचार-विमर्श हुआ और विधिवत् 'बिहार शाक्त सङ्गठन' का सूत्रपात हो गया, जिसका विवरण अन्यत्र प्रकाशित है।

और कल्याण मन्दिर प्रकाशन के माध्यम से शाक्त धर्म और साधना के सम्बन्ध में हिन्दी में आपने पहले पहल विपुल प्रामाणिक साहित्य की रचना की, जिसका सर्वथा अभाव था। कितने ही गुप्त तन्त्र-ग्रन्थों का प्रकाशन आपकी प्रेरणा से हुआ। इसी प्रसंग में शुक्ल जी के जन्म-स्थान—उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद (बैसवारा) में स्थित बक्सर (बगसरि) के चण्डिका-क्षेत्र का परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि अनेक परिस्थितियों और साक्ष्यों के आधार पर वहाँ स्थित चण्डिका-मन्दिर का भू-भाग श्री दुर्गा सप्तशती में वर्णित राजा सुरथ और वैश्य समाधि का साधना-स्थल माना जाता है क्योंकि वहाँ आज भी 'राजा का चौतरा (चबूतरा)' और 'बनेवा (वणिक्) की कुटिया' नाम से प्रसिद्ध स्थान सुरक्षित हैं। साथ ही वहाँ 'चण्डिका' और 'अम्बिका' नाम से ख्यात दो प्रस्तर-मूर्तियाँ भी पूजी जाती हैं। शुक्ल जी ने चण्डिका देवी के इस वर्णन की प्रासङ्गिकता को स्पष्ट करते हुए यह रहस्योद्घाटन किया कि उक्त देवी-मन्दिर के पीछे ही एक मैथिल तांत्रिक साधक का स्थान भी आज तक बना हुआ है, जिससे पता चलता है कि 'वङ्गेनोत्पादिता विद्या, मैथिलेन च पालिता' उक्ति कितनी सार्थक है। उक्त मैथिल साधक के प्रभाव से बैसवाड़े के सामान्य जन ही नहीं, वहाँ के इतिहास-प्रसिद्ध राणा बेणी माधवसिंह, राव राम बख्श सिंह आदि नरेश भी शाक्त-साधना में पारङ्गत थे।

स्वयं पटना नगर में अज्ञात रूप से निवास करनेवाले शाक्त साधकों के प्रति सङ्केत करते हुए शुक्ल जी ने उसी दिन प्रातःकाल की घटना का उल्लेख किया, जिसके अनुसार उन्हें अकल्पित रूप से कङ्कड़बाग के ही क्षेत्र में एक उच्च कोटि के साधक डा० सूर्यकान्त ठाकुर के दर्शनों का सौभाग्य मिला था। आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए शुक्ल जी ने बताया कि पूज्य श्री ठाकुर जी द्वारा एक अनुशासित शाक्त-मण्डल का परिचालन ही वर्षों से नहीं हो रहा है, अपितु अनेक साधकोपयोगी कृतियों की अपने सुन्दर रचना भी की है, जो प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु उनके विषय में निकटस्थ पटना-निवासी तक नहीं के बराबर जानते हैं। इस सन्दर्भ में शाक्त सङ्गठन की आवश्यकता पर बल देते हुए शुक्ल जी ने उपाध्यक्ष श्री पं० गोविन्दशरण जी उपाध्याय से अनुरोध किया कि आप बिहार में शाक्तों के सङ्गठन के महत्-कार्य का सूत्रपात करें।

श्री उपाध्याय जी ने उपस्थित शाक्त बन्धुओं का स्वागत करते हुए कहा कि शाक्त साधना की दृष्टि से मिथिला का गौरव प्राचीन काल से सर्व-मान्य रहा है और आज भी उसका विशेष महत्व है। ऐसी दशा में शाक्त बन्धुओं के सङ्गठन हेतु अ० भा० शाक्त-सम्मेलन की शाखा सर्वप्रथम बिहार की राजधानी पटना में स्थापित हो, यह सर्वथा उचित ही है। शाक्त-धर्मानुयायियों को अपने-अपने जनपद और नगर में महीने में कम-से-कम एक बार तो परस्पर मिलना ही चाहिए। इसके लिए एक सङ्गठन का होना आवश्यक है। इस परिप्रेक्ष्य में उपाध्याय जी ने उपस्थित बन्धुओं से अपना-अपना परिचय देते हुए सङ्गठन के सम्बन्ध में सुझाव देने का अनुरोध किया।

इसके बाद परिचय देने का क्रम चला—सर्वश्री १ पं० अमरनाथ झा, हजारीबाग; २ पूज्य स्वामी अखिलेशजी; ३ पं० रङ्गनाथ राकेश, वाराणसी; ४ डा० बी० पी० साही, हथवा हाउस, पटना; ५ कुमार उमेशचन्द्र ज्योतिषी, पटना; ६ ब्रजेन्द्र गणेश, पूर्णिया; ७ प्रो० कृष्णादत्तजी झा, सहरसा; ८ डा० जगदीश दास, पटना; ९ जे० नाथ, बम्बई; १० पं० लक्ष्मण जी चौबे, पटना; ११ पं० कृष्णकिशोर श्रोत्रिय, ग्वालियर (म०प्र०); १२ पं० गया ठाकुर, सिवान; १३ श्रीवागीश्वर खाँ, सहरसा; १४ श्रीविजय चन्द्र, साहिबगंज; १५ श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव, पटना; १६ श्री रमापतिलाल दास, मधुबनी; १७ पं० राजेन्द्रकिशोर मिश्र, चम्पारण; १८ श्री रामनारायण जी, रोहतास; १९ श्री देवनारायण प्रसाद जी,

भोजपुर; २० डा० जवाहरप्रसाद सिंह, दरभंगा; २१ श्री विजन, मधेपुर; २२ पं० चन्द्रिकाप्रसाद द्विवेदी, भोजपुर; २३ श्री ब्रजदेव सिंह, पटना; २४ श्री शशिभूषण गुप्त, भोजपुर, २५ श्री सुनीलकुमार भगत, सहरसा; २६ पं० जीवनाथ जी झा, धनबाद; २७ पं० प्रभुनारायण जी झा, धनबाद; २८ श्री रामजन्म मिस्त्री, भोजपुर; २९ श्रीधर रथ, गंजाम (उड़ीसा); ३० श्री सत्यनारायण सिंह, सीतामढ़ी; ३१ श्री मधुसूदन चौधरी, पटना, ३२ पं० गङ्गाधर पाण्डेय, पटना; ३३ पं० कृष्णमुरारी तिवारी, पटना; ३४ श्री विजय वत्स, पटना; ३५ श्री देवनारायण प्रसाद, भोजपुर; ३६ श्री जगदीश्वरशरण, मुजफ्फरपुर; ३७ श्री छत्रधारी लाल दास, राँची इत्यादि सभी उपस्थित बन्धुओं ने सङ्गठन के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए अपने-अपने परिचय प्रदान किये।

गंजाम (उड़ीसा) के मूर्धन्य साधक एवं विद्वान् पण्डित धरणीधर मिश्र जी ने अपना परिचय देने के साथ ही अपने शोध-प्रबन्ध का उल्लेख करते हुए यह प्रतिपादित किया कि पुरी के श्री जगन्नाथ जी का स्थान वास्तव में दक्षिणा काली का पीठ है। आपने अपना यह शोध-प्रबन्ध 'चण्डी' में प्रकाशनार्थ पत्रिका के सम्पादक श्री ऋतशील शर्मा को प्रदान किया। इसके सिवा आपने अपने पूज्य-पिता साधक-प्रवर स्व० पं० रामचन्द्र मिश्र द्वारा रचित सर्वाङ्गपूर्ण संग्रह-ग्रन्थ 'श्यामाकुल-महोदधि' की पाण्डुलिपि भी प्रकाशनार्थ प्रदान की, जिस पर उपस्थित शाक्त समाज ने बड़ी हर्ष-ध्वनि की।

हथवा हाउस, पटना के महाराजकुमार डा० बी० पी० साही द्वारा शाक्त-संगठन हेतु उपस्थित समाज को बड़े उत्तम ढंग से उद्‌बोधित किया गया। साथ ही आपने यह बताकर सभी को चकित कर दिया कि आपने भारतीय ज्योतिष शोध संस्थान की स्थापना की है और आपके पास अनेक दुर्लभ प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थादि संग्रहीत हैं तथा आपके पूर्वजों द्वारा प्रतिष्ठित अनादि वनदुर्गा का सिद्ध पीठ - स्थान दर्शनीय है। आपने शाक्त-संगठन हेतु अपना सक्रिय सहयोग देने का आश्वासन दिया, जिससे सभी में उत्साह की लहर दौड़ गई।

अन्त में उपाध्यक्ष पं० गोविन्दशरण उपाध्याय जी के अनुरोध पर परम पूज्य श्री स्वामी अखिलेश जी ने अपना मार्मिक प्रवचन प्रारम्भ किया। अपनी विदेश-यात्राओं के अनुभवों के आधार पर विश्व के लोगों की भारतीय धर्म-विज्ञान के प्रति गहरी जिज्ञासा की चर्चा करते हुए आपने अथर्ववेद के सन्दर्भ में 'शक्ति' की सर्वाधिक महत्ता पर प्रकाश डालते हुए 'शाक्त-साधना' को न केवल विज्ञान-सम्मत, अपितु ज्ञान-विज्ञान आदि विषयक सभी गुणों से परिपूर्ण सिद्ध किया। इस प्रसङ्ग में आपने 'हवन' के महत्व, शाक्तों की बन्धुत्व-भावना, सत्य के वास्तविक स्वरूप आदि अनेक विषयों की विवेचना करते हुए 'त्रिपुरा-रहस्य' का उल्लेख किया और बताया कि नेत्रों का पवित्रता से, हाथों का ईमानदारी से, मन का समर्पण से और कानों का अच्छे विचार-श्रवण से गहरा सम्बन्ध है। प्रवचन का समापन करते हुए आपने श्री जगदम्बा का नाम-कीर्तन प्रारम्भ किया, जिसमें उपस्थित सभी बन्धुओं ने बड़ी श्रद्धा के साथ योग-दान किया।

इस प्रकार प्रथम 'परिचय-संगोष्ठी' का कार्य-क्रम सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ।

द्वितीय सत्र (सङ्गठन-संगोष्ठी) : १५ नवम्बर, १९८६ : अपराह्न ६ बजे

यह सङ्गोष्ठी प्रो० पं० चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु' की अध्यक्षता में हुई, मंच पर सम्मेलन के उपाध्यक्ष श्रीउपाध्यायजी एवं मन्त्री श्रीशुक्ल जी के साथ विशिष्ट अतिथि-द्वय प्रोफेसर पं० कृष्णदत्त जी झा एवं पूज्यश्री स्वामी अखिलेश जी विराजमान थे। सर्वप्रथम श्री पं० सतीशचन्द्र उपाध्याय ने रात्रि-सूक्त का पाठ किया। फिर उपाध्यक्ष महोदय ने प्रो० झा जी से उद्‌बोधन हेतु अनुरोध किया।

 (शेष पृष्ठ २५ पर)

पारायण-विधि

[मन्त्र-साधना में 'पारायण-विधि' का अपना विशेष स्थान है। ब्रह्मीभूत 'राष्ट्र-गुरु' श्री १००८ स्वामी जी महाराज द्वारा इस विधि का उद्‌घाटन ही नहीं किया गया, अपितु सं० २०१४ से आपके ही विचक्षण निर्देशन में दुर्लभ 'तान्त्रिक पञ्चाङ्ग' का प्रकाशन भी होने लगा, जिसके बिना इस विधि का साङ्गोपाङ्ग पालन करना सम्भव ही नहीं था। अतः इस विधि का पुनः इस रूप में प्रकाशन कर हम आपकी पुण्य स्मृति में अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलियाँ प्रस्तुत करते हैं।–सं०]

प्रातःसन्ध्या

मूल-मन्त्र से आचमन करके मूल - मन्त्र से हो तीन बार प्राणायाम करे। फिर सङ्कल्प करे—

ममोपात्त-समस्त-दुरित-क्षय-द्वारा श्रीपरमेश्वर-प्रीत्यर्थं (देश-कालौ संकीर्त्य) श्रीराज-राजेश्वरी-प्रीत्यर्थं (देवी-मान-रीत्या सङ्कल्प्य) श्रीविद्या-प्रातः-संध्यामुपासिष्ये।

श्रीनाथादि-गुरु-त्रय गण-पति पीठ-त्रयं भैरवम्, सिद्धौघं वटुक-त्रयं पद-युगं दूती-क्रमं मण्डलम्।
वीरान् द्व्यष्ट-चतुष्क-षष्टि-नवकं वीरावली-पञ्चकं, श्रीमन्मालिनि मन्त्र-राज-सहितं वंदे गुरोर्मण्डलं॥

श्रीगुरु-पादुका मन्त्र से श्रीगुरु-देवता को प्रणाम कर, मूल-मन्त्र से ऋष्यादि न्यास कर ध्यान करे। अपने आगे धेनु-मुद्रा से जल को अमृत-मय कर, मूल-विद्या से आठ बार अभि-मन्त्रित कर उस जल द्वारा बिन्दु-सहित सोलह स्वरों—**अं नमः, आं नमः ... अः नमः**—से मार्जन करे। तत्पश्चात् दाहिने हाथ में जल लेकर 'क' से लेकर 'म' तक मूल-विद्या-समेत—**'कं नमः खं नमः ... मं नमः क-५ ह-६ स-४'**—से अभि-मन्त्रित कर आचमन करे। फिर 'य' से 'क्ष' पर्यन्त—**'यं नमः रं नमः ... क्षं नमः क-५ ह-६ स-४'**—से शिर का प्रोक्षण कर सूर्य-मण्डल में ध्यान करे—

सकुंकुम - विलेपनामलिक - चुम्बि - कस्तूरिकाम्, समन्द-हसितेक्षणां स-शर-चाप-पाशांकुशाम्।
अशेष-जन-मोहिनीमरुण-माल्य-भूषाम्बराम्, जपा-कुसुम-भासुरां जप-विधौ स्मरेदम्बिकाम्॥
चतुर्भुजे चन्द्र-कलावतंसे कुचोन्नते कुंकुम-राग-शोणे, पुंड्रेक्षु-पाशांकुश-पुष्प-बाण-हस्ते नमस्ते जगदेक-मातः।

ध्यान करने के बाद दाहने हाथ में जल लेकर 'लं वं रं यं हं' से तीन बार अभिमन्त्रित कर **'क-५ ह-६ स-४'** से भी तीन बार अभिमन्त्रित कर उस जल को बाँयें हाथ के अंगुष्ठ व अनामिका से **'क-५ ह-६ स ४'** से अपने शिर का तीन बार प्रोक्षण करे। शेष जल को बांयें हाथ में रखकर उस तेज-रूप जल को बांयें नासा-पुट से अन्दर खींचकर अपनी देह के अन्दर स्थित सकल कलुष के प्रक्षालन की भावना कर दाहने नासा-पुट से निकाल कर उस जल को फिर दाहने हाथ में लेकर अपनी बांयीं तरफ जलती हुई वज्र-शिला का ध्यान कर **'४ श्लीं पशु हुँ फट्'** से उस शिला पर पटके। तब हाथ धोकर मूल-विद्या से जल लेकर **'क-१५'** से सहस्र-दल-कमल से जो स्वर चल रहा हो, उससे उस जल को बायें हाथ में रखकर **'अमृत-मालिनी स्वाहा'** मन्त्र से सब अंगुलियों से अपने शिर का तीन बार प्रोक्षण करे।

४ क-५ आत्म-तत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ ह-६ विद्या-तत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ स-४ शिव-तत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ स-४ शिव-तत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ ह-६ विद्या - तत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ क-५ आत्म-तत्वं शोधयामि स्वाहा, ४ क-१५ सर्व-तत्वं शोधयामि स्वाहा।

तीन या नौ बार आचमन करे। अर्घ्य को अंजलि में लेकर खड़े होकर **'क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे, ह-६ कामेश्वरि च धीमहि, स-४ तन्नः प्रबोदयात्, श्रीमहा - त्रिपुर - सुन्दरी श्रीपादुकायै एषोऽर्घ्यः**

स्वाहा' से तीन बार अर्घ्य देकर 'ह्रां ह्रीं ह्रूं हंसः श्रीसूर्य एष ते अर्घ्यः स्वाहा' से सूर्य की तरफ मुख करके तीन बार अर्घ्याञ्जलि देकर 'क-१५ श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः' से सूर्य का तीन बार तर्पण कर 'ह्रां ह्रीं ह्रूं हंस श्रीसूर्य तर्पयामि नमः' से सूर्य का तीन बार तर्पण कर मूलाधार में मूल-विद्या के प्रथम कूट का कोटि विद्युत् के समान चिन्तन कर उस तेज का सुषुम्णा से ब्रह्म-रन्ध्र में ले जाकर बहते हुये नासा-पुट से आकाश में वह्नि-मण्डल का आवाहन कर उस तेज से उत्पन्न वाग्भवेश्वरी का ध्यान करे—

पीतां पीताम्बरां पीत-स्रग्-विभूषानुलेपनाम् । तडित्-कोटि-समाभासां बालामक्ष-स्रगुज्ज्वलाम् ॥
पुस्ताभय-कराम्भोजां वह्नि-पीठे निषेदुषीम् । वाग्मिनीं वाग्भवोद्भूतां त्रीक्षणां सुस्मितां स्मरेत् ॥

तत्पश्चात् 'क-५ त्रिपुरा वागीश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः' से गन्ध-पुष्प-अक्षत से तीन बार पूजन करे। 'ऐं त्रिपुरा-देवि विद्महे वाग्भवेश्वरि धीमहि तन्नो मुक्तिः प्रचोदयात्, श्री-त्रिपुरा - वागीश्वरी-श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा' से वाग्भव गायत्री का उच्चारण कर तीन बार अर्घ्यांजलि को ऊपर की ओर फेंक कर पुनः प्रथम कूट का उच्चारण कर 'त्रिपुरा वागीश्वरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः' से तीन बार तर्पण कर श्रीगुरु-पादुका मन्त्र का ध्यान कर तीन बार प्राणायाम कर मातृका न्यास करे। फिर ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-न्यास कर '४ क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे, ह-६ कामेश्वरि च धीमहि, स-४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्'—ऐसी तुरीय गायत्री का, फिर 'ऐं त्रिपुरा-देवि विद्महे, वाग्भवेश्वरि धीमहि, तन्नो मुक्तिः प्रचोदयात'—ऐसी वाग्भव कूट गायत्री का और फिर मल-विद्या का, फिर वाग्भव-कूट का यथा - शक्ति जप करे।

नाथ-पारायण

प्रातः-सन्ध्या के पश्चात् 'नाथ-पारायण' का सङ्कल्प कर ध्यान कर पारायण करे।

मूलाधार-स्थित चतुर्दल-कमल में विद्युत् - पटल के समान भासुर वर्णवाली, पुष्प-बाण-इक्षु-कोदण्ड - पाश और अंकुश धारण करनेवाली, युगाक्षर और नित्याक्षर-मयी भगवती के चारों ओर अपने करों में ज्ञान-मुद्रा और वर-मुद्रा को धारण किए हुए वाग्भव बीज 'ऐं' की उपासना में तत्पर मूल पङ्कज-स्थित योनि-मण्डल में नव-नाथों का ध्यान करे। यथा—

प्रातर्मूलाधार - गते कमले वह्नि - मण्डले वाग्बीज - रूपां नित्यां तां विद्युत्-पटल-भासुराम् ।
पुष्प-बाणेक्षु-कोदण्ड-पाशांकुश-लसत् - कराम्, स्वेच्छा - गृहीत - वपुषं युग-नित्याक्षरात्मिकाम् ।
घटिकावरणोपेतां परितः प्राञ्जलीनथ, ज्ञान - मुद्रा - वर - करान् वाग्भवोपास्ति - तत्परान् ।
नव-नाथान् स्मरेन्मूल-पङ्कजे योनि - मण्डले ॥

इस प्रकार ध्यान कर देवी-मान वर्ष, मास और दिवस के उल्लेख-पूर्वक नाथ-पारायण करे। यथा—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः श्रं आं इं ईं उं उं ऋं ॠं ह्रीं श्रीं अं 'प्रकाशानन्द-नाथ - रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ऌं ॡं एं ऐं ओं औं श्रं अः ह्रीं श्रीं ऌं **विमर्शानन्द-नाथ-रूपिणी श्रीमहा० ।**

४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः कं खं गं घं ङं ह्लीं श्रीं कं आनन्दानन्द-नाथ० ।
४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः चं छ जं झं ञं ह्लीं श्रीं चं ज्ञानानन्द-नाथ० ।
४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः टं ठं ड ढं णं ह्लीं श्रीं टं सत्यानन्द-नाथ० ।
४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः तं थं दं धं नं ह्लीं श्रीं तं पूर्णानन्द-नाथ० ।
४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः पं फं बं भं मं ह्लीं श्रीं पं स्वभावानन्द-नाथ० ।
४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः यं रं लं वं शं ह्लीं श्रीं शं यं प्रतिभानन्द-नाथ० ।
४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः षं सं हं लं क्षं ह्लीं श्रीं षं सुभगानन्द-नाथ० ।

इस प्रकार नव-नाथात्मिका मूल-विद्या का जप करे। इसके उपरान्त यथा-शक्ति तद्दिन-नित्या-विद्या का भी जप करे। इस प्रकार नाथ-पारायण समाप्त हो जाता है।

घटिका-पारायण

सङ्कल्प में 'घटिका-पारायण' का उल्लेख कर देना चाहिए।

ॐ ऐं ह्लीं श्रीं क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः यकारादि-घटिका-रूपिणी महा - त्रिपुर-सुन्दरीं पूजयामि नमः।

४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः रकारादि-घटिका-रूपिणी महा-त्रिपुर-सुन्दरीं पूजयामि नमः।

४ क-१५ ङं अं अ ॐ विजया हंसः लकारादि-घटिका-रूपिणी महा-त्रिपुर-सुन्दरीं पूजयामि नमः।

इसी प्रकार क्षकार-पर्यन्त तत्पश्चात् अकारादि से क्षकारादि-पर्यन्त कर लेना चाहिए।

घटिका-पारायण 'अ ए च त य' के क्रम से आरम्भ होता है। यहाँ 'य' से, जो वर्ष के प्रथम दिन की घटिका थी, उसी क्रम से लिख दिया गया है। इसी प्रकार उपर्युक्त क्रम से घटिका-पारायण कर लेना चाहिए।

उपस्थान

त्रिपुरा सर्व-रूपाणि चराणि स्थावराणि च। सायं प्रातस्तु मध्याह्ने सर्वदा सा परा स्थिता ।।
उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वत - मूर्धनि। ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि ! यथा-सुखम् ।।

गुं गुरुभ्यो नमः। दुं दुर्गायै नमः। गं गणपतये नमः। क्षं क्षेत्र-पालाय नमः। सं सरस्वत्यै नमः। पं परमात्मने नमः।

श्रीशिवाचार्य - वर्याद्यां शंकराचार्य - मध्यमाम्, अस्मदाचार्य - पर्यन्तां वन्दे गुरु - परम्पराम्।
दिव्य-श्रीपादुकां ध्यात्वा परितुष्याम्यहं सदा, श्रीगुरुं परमं वन्दे पश्चात् तं परमं गुरुम्।
परमेष्ठि - गुरुं वन्दे परात्पर - गुरुं भजे, आनन्दाख्य - गुरुं वन्दे तच्छिष्यस्तत्-कृपा-वशः ।।

सम्प्रदाय-क्रम से श्रीनाथ आदि की पूजा कर परमेष्ठि गुरु, परापर गुरु, परम गुरु व गुरु के नाम के आगे 'आनन्द-नाथ' शब्द जोड़कर उच्चारण करे—

आनन्द-स्वच्छन्द-चिद्-रूपानन्द - गोत्रः अमुकानन्द - नाथ अमुक-शर्माऽहं भो अभिवादये।

।। इति प्रातः - सन्ध्या-विधिः ।।

मध्यान्हिक सन्ध्या

प्राणायाम से सूर्य-तर्पण तक प्रातः-सन्ध्या के समान करे।

अनाहत में मूल-विद्या के द्वितीय कूट को रक्त-वर्ण जैसा ध्यान करे। उस तेज को सुषुम्णा-मार्ग से ब्रह्म-रन्ध्र में ले जा कर बहते हुये नासा-पुट के मार्ग से निकाल कर सूर्य-मण्डल में आवाहन कर कामेश्वरी का ध्यान करे। यथा—

रक्तां सुरक्ताम्बर - भूषणाढ्यां, पाशांकुशाभीति - वरान् दधानाम्।
शुचि-स्मितामुत्कट - यौवनाढ्यां, कामेश्वरीं संस्मरेत् त्रि-नेत्राम्॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह-६ श्रीत्रिपुरा कामेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः'—इस मन्त्र से तीन बार पूजन कर '**क्लीं त्रिपुरा - देवि विद्महे कामेश्वरि च धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्**'—से काम-राज-कूट गायत्री का उच्चारण कर '**श्रीत्रिपुरा कामेश्वरी श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा**' से तीन बार अर्घ्याञ्जलि देकर फिर कामराज-कूट का उच्चारण कर '**श्रीत्रिपुरा कामेश्वरि श्रीपादुकां तर्पयामि नमः**' से तीन बार तर्पण कर श्रीगुरु-पादुकाओं का ध्यान कर प्राणायाम तीन बार कर पहिले की भाँति मातृका-न्यास कर फिर ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-न्यास करे। फिर '**४ क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे ह-६ कामेश्वरि च धीमहि स-४ तन्नः शक्ति प्रचोदयात्**—से तुरीय गायत्री का, फिर '**क्लीं त्रिपुरा-देवि विद्महे कामेश्वरि च धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्**' से कामराज-कूट गायत्री का, फिर मूल-विद्या का, फिर कामराज-कूट का यथा-शक्ति जप करे।

तत्त्व-पारायण

सङ्कल्प में तत्व - पारायण का उल्लेख कर देना चाहिए।

ध्यान—**मध्याह्ने हृदयाम्भोज-कर्णिके सूर्य-मण्डले, काम - राजात्मिकां देवीमलक्त - कुसुमारुणाम्।**
प्रसून-बाण-पुण्ड्रेक्षु - चाप-पाशांकुशान्विताम्, परितः स्वात्म-मुख्याभिः षट्-त्रिंशत्-तत्व-शक्तिभिः।
रक्त-माल्याम्बरालेप-भूषाभिः परि - वारिताम्, युग - नित्याक्षर - मयीं घटिकावरणां स्मरेत्॥

इस प्रकार देवी का ध्यान कर तत्व-पारायण करे—

४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः श्रं **शिव-तत्व-स्वरूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।**

४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः कं **शक्ति-तत्व-स्वरूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।**

४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः खं **सदाशिव-तत्व-स्वरूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।**

इसी प्रकार '४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः क्षं **पृथ्वी-तत्व-स्वरूपिणी श्रीमहा - त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः**' तक कर लेना चाहिये।

'**श्रं कं**' से लेकर '**क्षं लं**' पर्यन्त शिव-शक्ति-सदा-शिव आदि से पृथ्वी-तत्व-पर्यन्त तत्व - पारायण उपर्युक्त प्रक्रिया से किया जाता है।

अब उपस्थान पृष्ठ ११ के समान करे—**त्रिपुरा सर्व-रूपाणि ... अभिवादये।**

॥ इति मध्याह्निक विधिः॥

सायं-सन्ध्या

प्राणायाम आदि से सूर्य-तर्पण-पर्यन्त प्रातः - सन्ध्या की भाँति करे। फिर आज्ञा-चक्र में **'ह क्ष'** के बीच में मूल-विद्या के तृतीय कूट को शुद्ध स्फटिक वर्ण जैसा ध्यान कर उस तेज को सुषुम्णा के मार्ग से ब्रह्म-रन्ध्र में ले जाकर बहते हुये नासा-पुटाकाश में स्थित सोम-मण्डल का आवाहन कर उससे उत्पन्न अमृतेश्वरी वृद्धा का ध्यान करे। यथा—

शुक्लाम्बरालेप-स्रग्-विभूषा - विभूषिताम्, जटा-जूट-त्रयां नेत्र-त्रयोद्भासि-मुखाम्बुजाम् ।
ईषत्-स्फुटित-दंष्ट्रां च भैरवी-रूपमास्थिताम्, जरा-पलित-संकीर्णां लम्ब-मान-पयोधराम्,
पाशांकुशौ पुस्तकं च स्फटिकाक्ष-स्रजं करैः, दधानां शक्ति-बीजोत्थां पूर्णेन्दोर्मण्डले स्थिताम् ।
ध्यायेदाद्यां परां शक्ति - मद्भिर्निषेविताम्, भोग - मोक्ष - प्रदां शान्तामनन्ताममृतेश्वरीम् ।।

अर्थात् पूर्णेन्दु-मण्डल में शक्ति-बीज से समुत्थित, शुक्ल-वस्त्रा, शुक्लालङ्कार-युक्ता, तीन नेत्र और तीन जटा-जूटवाली, भैरवी-रूप में स्थित, जरा से पलित, लटकते हुये पयोधरों वाली आद्या परमा-शक्ति भोग-मोक्ष-प्रदा शान्ता अमृतेश्वरी का ध्यान करना चाहिये।

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स-४ श्रीत्रिपुराऽमृतेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः'—इस मन्त्र से तीन बार पूजन कर फिर **'सौः त्रिपुरा-देवि विद्महे शक्तीश्वरि च धीमहि, तन्नोऽमृता प्रचोदयात्'**—इस तीसरी गायत्री का उच्चारण कर **'श्रीत्रिपुराऽमृतेश्वरी श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा'** इस मन्त्र से तीन बार अर्घ्यांजलि देकर फिर शक्ति-कूट का उच्चारण कर **'श्रीत्रिपुराऽमृतेश्वरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः'** इस मन्त्र से तीन तर्पण कर श्रीगुरु-पादुकाओं का ध्यान कर तीन बार प्राणायाम करे। फिर पहले की भाँति मातृका-न्यास कर पुनः ऋष्यादि-कर-षडङ्ग न्यास करे। तत्पश्चात् **'४ क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे ह-६ कामेश्वरि च धीमहि स-४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्'** - इस तुरीय गायत्री का तथा **'सौः त्रिपुरा-देवि विद्महे शक्तीश्वरि च धीमहि तन्नोऽमृता प्रचोदयात्'**—इस शक्ति-कूट गायत्री का, फिर मूल- विद्या का, फिर शक्ति-कूट का जप करे।

सन्ध्या के पश्चात् तिथि-नित्या के पारायण का सङ्कल्प कर पारायण करे।

नित्या-पारायण

सङ्कल्प में तिथि-नित्या-पारायण का योग कर ले।

१—४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः अं ऐं सकलह्रीं नित्य-क्लिन्ने मद-द्रवे सौः ग्रं कामेश्वरी-नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

२—४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः आं ऐं भग-भुगे भगिनि भगोदरि भग-माले भगावहे भग-गुह्ये भग-योनि भग-निपातिनि सर्व-भग-वशंकरि भग-रूपे नित्य-क्लिन्ने भग-स्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भग-क्लिन्ने क्लिन्न-द्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भग-विच्चे क्षुभ क्षोभय सर्व-सत्वान्

भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं ब्लूं में ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं आं भग-मालिनी नित्या - रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

३—४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः इं ओं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मद-द्रवे स्वाहा इं नित्य-क्लिन्ना नित्या-रूपिणी श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

४—४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः ईं ओं क्रों भ्रों क्रौं झ्रौं छ्रौं ज्रौं स्वाहा ईं भेरुण्डा नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

५—४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः उं ओं ह्रीं वह्नि-वासिन्यै नम उं वह्नि-वासिनी नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी० ।

६—४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः ऊं ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्य-मद-द्रवे ह्रीं ऊं महा-वज्रेश्वरी नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी० ।

७—४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ऋं ह्रीं शिव-दूत्यै नमः ऋ शिव-दूती नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर० ।

८—४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः ॠं ओं ह्रीं हुँ खे च छे क्षः स्त्रींहुं क्षेंह्रीं फट् ॠं त्वरिता नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर० ।

९—४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः लृं ऐं क्लीं सौः लृं कुल-सुन्दरी नित्या-रूपिणी श्रीमहा० ।

१०—४क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः लं. हस्क्लरडें हस्लरडीं हस्क्लरडौः लृं नित्या-रूपिणी श्रीमहा० ।

११—४क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः एं ह्रीं फ्रें स्रूं क्रों आं क्लीं ऐं ब्लूं नित्य-मद-द्रवे हुँ फ्रें ह्रीं एं नील-पताका नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर० ।

१२—४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः ऐं भ्मूदूं ऐं विजया नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर० ।

१३—४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः ओं स्वौं ओं सर्व-मंगला नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर० ।

१४—४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः औं ओं नमो भगवति ज्वाला-मालिनि देव-देवि सर्व-भूत-संहार-कारिके जात-वेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं र र र र र र र हुं फट् स्वाहा औं ज्वाला-मालिनी नित्या-रूपिणी श्रीमहा० ।

१५—४ क-१५ ङं अं अ ऊं विजया हंसः श्रं चक्रौं अं चित्रा नित्या-रूपिणी श्रीमहा० ।

१६—४ क-१५ ङं श्रं अ ऊं विजया हंसः अः क-१५ अः ललिता महा-नित्या-रूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

अब उपस्थान प्रातः-सन्ध्या-वत् करे—

त्रिपुरा सर्व-रूपाणि.........अभिवादये ॥

॥ सायं-सन्ध्या विधिः ॥

तुरीय संध्या

प्राणायाम आदि से तत्व-आचमन-पर्यन्त प्रातः-सन्ध्या-वत् करे। सहस्रार-कमल में पद्म-राग के समान प्रभावाले मूल-विद्या के त्रयोदशाक्षर-रूप तुरीय कूट का ध्यान कर बहते हुये नासा-पुट तारक-मण्डल में परमाकाश में आवाहन कर उससे उत्पन्न तेज-रूप भगवती का ध्यान करे।

'हसकल हसकहल सकलह्रीं'—इस तुरीय कूट का उच्चारण कर **'श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः'**—इस मन्त्र से तीन बार पूजन कर फिर **'क-५ वाग्भवेश्वरि विद्महे, ह-६ कामेश्वरि च धीमहि, स-४ तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्'**—इस तुरीय गायत्री का उच्चारण करे। फिर **'श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी श्री-पादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा'** इस मन्त्र से तीन बार अर्घ्य देकर फिर तुरीय कूट का उच्चारण कर **'श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि'** इस मन्त्र से तीन बार तर्पण कर श्रीगुरु-पादुका का उच्चारण कर फिर तुरीय गायत्री का, फिर मूल-विद्या का, फिर तुरीय-कूट का यथा-शक्ति जप करे।

नाम-पारायण

सन्ध्या के पश्चात् नाम-पारायण का सङ्कल्प कर नाम-पारायण का ध्यान करना चाहिये। यथा—

रक्तां रक्ताम्बरां रक्त-स्रग्-विभूषानुलेपनाम्। पाशांकुशेक्षु-कोदण्ड - प्रसून-त्रिशिखां स्मरेत्॥

इस प्रकार हृदय में काल-नित्या का ध्यान कर पुनः हृदय में काल-चक्र के मध्य में श्रीचक्र की भावना कर काल-नित्याओं से वेष्टित पाश, अंकुश, इक्षु, कोदण्ड को धारण करनेवाली रक्त-वर्णा, रक्ताम्बरा, रक्त-माल्य-विभूषणा महा-त्रिपुर-सुन्दरी का ध्यान करे। यथा—

आई पल्लवितैः परस्पर-युतैर्द्वि-त्रि-क्रमादक्षरैः। काद्यैः क्षान्त-गतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः स-स्वरैः॥
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यान्यत्यन्त-गुह्यानि ते। तेभ्यो भैरव-पत्नि! विंशति-सहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः॥

निम्न-लिखित प्रत्येक मन्त्र के आदि में '४ क-१५ ङं श्रं अ ॐ विजया हंसः अ' और अन्त में 'हंसः' जोड़ कर पारायण करे यथा—

४ क-१५ ङं श्रं अ ॐ विजया हंसः अ काई हंसः।

खाई, गाई, घाई, ङाई, चाई, छाई, जाई, झाई, ञाई, टाई, ठाई, डाई, ढाई, णाई, ताई, थाई, दाई, धाई, नाई, पाई, फाई, बाई, भाई, माई, याई, राई, लाई, वाई, शाई, षाई, साई, हाई, ळाई, क्षाई।

अर्थात्

'४ क-१५ ङं श्रं अ ॐ विजया हंसः अ काई हंसः' से 'अ क्षाई हंसः' तक = ३५।
'४ क-१५ ङं श्रं अ ॐ विजया हंसः आ काई हंसः' से 'आ क्षाई हंसः' तक = ३५।
'४ क-१५ ङं श्रं अ ॐ विजया हंसः इ काई हंसः' से 'इ क्षाई हंसः' तक = ३५।
'४ क-१५ ङं श्रं अ ॐ विजया हंसः ई काई हंसः' से 'क्षाई हंसः' तक = ३५।
इसी प्रकार क्रम से······'अः काई हंसः' से 'अः क्षाई हंसः' तक = ३५ × १६ = ५६०।

यह पहिले दिन का नाम-पारायण हुआ।

दूसरे दिन का पारायण—

'४ क-१५ ङं श्रं अ विजया हंसः अ क काई हंसः' से 'अ क क्षाई हंसः' = ३५।

'४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः आ क काई हंसः' से 'आ क क्षाई हंसः' = ३५ ।

इसी प्रकार क्रम से '४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः अः क काई हंसः' से 'अः क क्षाई हंसः' तक = ३५ × १६ = ५६०

तीसरे दिन का पारायण—

'४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः अ ख काई हंसः' से 'अ ख क्षाई हंसः' = ३५ ।

'४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः आ ख काई हंसः' से 'आ ख क्षाई हंसः' = ३५ ।

इसी प्रकार क्रम से '४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः अः ख काई हंसः' से 'अः ख क्षाई हंसः' तक = ३५ × १६ = ५६०

इसी प्रकार क्रम से ३६ दिनों का पारायण समझ लेना चाहिये । ३६ दिन के ५६०×३६ = २०,१ ६० नाम हुये ।

यदि पहिले दिन के नाम-पारायण में '४ क-१५ ङं ग्रं अ ऊं विजया हंसः अ आई हंसः' से 'अ क्षाई' तक = ३६ के क्रम से प्रारम्भ किया जाये, तो पहिले दिन ५७६ नाम हुये और इसी प्रकार ३६ दिन के २०, ७३६ नाम हुये ।

मन्त्र-पारायण

माया कुण्डलिनी क्रिया मधु-मती, काली कला मालिनी ।
मातङ्गी विजया जया भगवती, देवी शिवा शाम्भवी ।।
शक्तिः शङ्कर - वल्लभा त्रि-नयना, वाग्वादिनी भैरवी ।
ह्रींकारी त्रिपुरा परापर - मयी, माता कुमारी ह्यसि ।।

माया—'ह्रीं', कुण्डलिनी—'ऐं', क्रिया —'क्लीं', मधुमती—मातृका-वर्ण । मातृका चार प्रकार से ली जाती है—

(१) शुद्ध मातृका 'अ आ' से 'ल क्ष' पर्यन्त ।

(२) विन्दु-युक्त 'अं आं' से 'लं क्षं' पर्यन्त ।

(३) विसर्ग-युक्त 'अः आः' से 'लः क्षः' पर्यन्त ।

(४) विन्दु-विसर्ग-युक्त 'अंः आंः' से 'लंः क्षंः' पर्यन्त ।

शक्ति = सौः, शङ्कर-वल्लभा = ह्स्रौं, त्रि-नयना = वौषट्, वाग्वादिनी — वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, भैरवी = ह्स्रैं ह्स्क्लरीं ह्स्रौंः, ह्रींकारी = ह्रीं , त्रिपुरा = क-१५, परापर-मयी = ह्सौः स्हौः, माता = ह्स्क्लर्डैं ह्स्क्लर्डीं ह्स्क्लर्डौः, कुमारी = ऐं क्लीं सौः । इस प्रकार से जप - क्रम आरम्भ करे ।

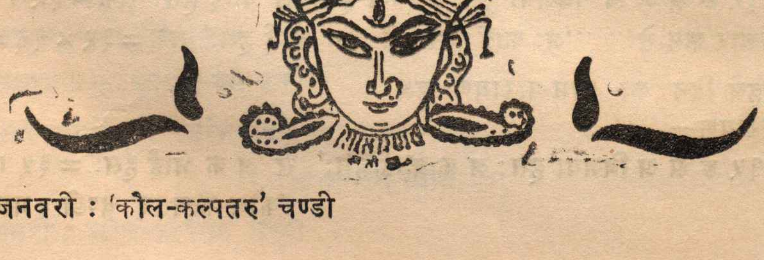

दक्षिण भारत में चण्डी-उपासना

श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अयङ्गार, श्री रङ्गम् (तमिलनाडु)

अब तक हमने ८ वसुओं, ९ निधियों, १० दिक्पालों, ११ रुद्रों तथा १२ आदित्यों का वर्णन किया। इन सबका प्रकाश अश्विनी द्वारा ही होता है। अश्व-मुखवाले दो देव सदा एक साथ घूमते रहते हैं। यही कारण है कि वेद में सर्व-व्यापी देवता के रूप में इनकी स्तुति की गयी है—**अश्विनौ व्यात्तम् इष्टं मनिषाण, अमुं मनिषाण, सर्वं मनिषाण।**

'मनिषाण'—प्रार्थना का तात्पर्य है कि अमुक फल की प्राप्ति के लिए आप ही हमारे मार्ग-दर्शी बनें। दिन-रात, पुण्य-पाप, सूर्य-चन्द्र, प्रकाश और तम, ज्ञान व अज्ञान—इस तरह मनुष्य की उच्च गति तथा अधो-गति दोनों के द्योतक के रूप में अश्विनी देवताओं को ज्योतिश्चक्र में स्थान मिला है। वह स्थान ध्रुव है, अव्यय है।

गीता में कहा गया है कि '**अक्षराणां अकारोऽस्मि।**' प्रणव में अकार का अर्थ परमात्मा है, मकार का जीवात्मा है। बीच में जो उकार है—वही अश्विनी है। अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा को जोड़नेवाले जुड़वाँ देवता हैं।

'अश्व' का अर्थ यह भी है कि 'श्व' का नहीं—अर्थात् कल का नहीं, आज का ही है। अर्थात् यह देवता आवाहन-मात्र से सन्तुष्ट होकर तुरन्त वर्तमान काल में ही फल प्रदान करता है। 'अश्व' का अर्थ घोड़ा भी है। शक्तिमान के रूप में घोड़ा सर्वोच्च माना गया है; अतः 'अश्व-शक्ति' (हॉर्स-पावर) शब्द बिजली की माप के लिए प्रयुक्त होता है।

महाभारत का 'हय-शिर उपाख्यान' प्रसिद्ध है। हय-मुखवाले एक असुर ने ब्रह्मा से सभी वेदों और शास्त्रों का अपहरण कर लिया। उसे मारने के लिए ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की। विष्णु ने अश्विनी देवताओं द्वारा 'हयग्रीव' का स्वरूप धारण किया और उस असुर का बध कर वेदों की रक्षा की तथा ब्रह्मा को उन्हें पुनः प्रदान किया।

अश्विनी देवताओं का निवास ऊँचे पहाड़ों पर घने जंगलों पर तथा युद्ध-क्षेत्रों में रहता है। अतः ज्योतिश्चक्र में अश्विनी नक्षत्र के चारों चरण मेष-राशि में, सिंह राशि में तथा धनु-राशि में निहित हैं। मेष-राशि इन देवताओं की चर-राशि है; सिंह-राशि स्थिर राशि है; धनु-राशि उभय राशि है। अतः धनु-राशि में मूल-नक्षत्र में इन देवताओं का आवाहन करने से साधक को शीघ्र ही मन्त्र-सिद्धि मिल जाती है।

तन्त्र का निर्देश है—'मूलेन आवाहयेत् देवीम्।' अश्विनी देवताओं के स्थान का सप्तम स्थान ज्योतिश्चक्र में मनुष्यों का होता है; मेष-राशि का सप्तम स्थान तुला-राशि है; सिंह-राशि का सप्तम स्थान कुम्भ-राशि है; तथा धनुराशि का सप्तम स्थान मिथुन-राशि है। ये तीनों मनुष्य-राशियाँ हैं।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्य उच्यते।'

प्रणव का स्थान सर्वोपरि है। उस प्रणव के द्योतक धनु-राशि में आत्मा-रूपी शर से ब्रह्म-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अश्विनी देवताओं की कृपा अनिवार्य है।

'मेष' का पर्यायवाची 'अज' है। अश्विनी-देवता ही 'अजा' अर्थात् प्रकृति है। प्रकृति के तीन गुण हैं—१ रजस्, २ सत्व, ३ तमस्, जिनके रूप क्रमशः लोहित, शुक्ल और कृष्ण हैं—इन तीनों रूपों को ही दिखाकर प्रकृति पुरुष को अपने वश में कर लेती है।

अश्विनी की कृपा से प्रकृति पुरुष के वश में आ जाती है। उसी को वश में लाने के लिए 'वाग्-भव', 'योनि' और 'काम-कला' को जानना आवश्यक है। बीच में योनि होती है। अतः 'योनि-मुद्रा' से ही देहली-दीप न्याय के अनुसार 'वाग्-भव' तथा 'काम-कला' पर नियन्त्रण मिल सकता है। 'योनि-मुद्रा' के लिए दोनों हाथों, दोनों पैरों तथा दो गुह्याङ्गों का उपयोग किया जाता है। तभी मन के नियन्त्रण से वाक्-सिद्धि आदि मिलेगी।

सिंह-राशि में अश्विनी का स्थान होने से श्रीदुर्गा सिंह-वाहिनी के रूप में पूजी जाती हैं। यहीं **'प्राणाः यस्य तु मातरः पितृ-कुलं यस्याऽस्त्यपानात्मकम्'** का ध्यान होता है। अतः सिंह-राशिस्थ 'अश्विनी' देवता का अनुग्रह प्राप्त होने पर सिंह-राशि के सप्तम स्थान पर कुम्भ-राशि में गुरु का साक्षात्कार मिल जाता है।

किसी भी पूजा के लिए कलश-स्थापन आवश्यक है। उस कलश के मुख में विष्णु, कण्ठ में रुद्र तथा मूल में ब्रह्मा का और मध्य स्थान में मातृ-गणों का आवाहन किया जाता है। कुम्भ-राशि के गुरु के ध्यान से सहस्रार-स्थित चन्द्रमा के रस अर्थात् अमृत का पान साधक करने लगता है। मार्कण्डेय महर्षि की प्रार्थना—**'मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्'**—सफल हो जाती है। अतः कुम्भ-राशि-स्थित गुरु के अनुग्रह से ही साधक को मन्त्र-सिद्धि मिलती है। ब्रह्म-रूप गुरु के ध्यान से महा-काली का, विष्णु-रूप गुरु के ध्यान से महा-लक्ष्मी का और रुद्र-रूप गुरु के ध्यान से महा-सरस्वती का अनुग्रह मिलता है। इन तीनों शक्तियों का एक-साथ अनुग्रह प्राप्त करने के लिए अश्विनी देवताओं की कृपा अनिवार्य है।

वेदों में अश्विनी के कई रूप वर्णित हैं, परन्तु साधक के लिए एक ही रूप पर्याप्त है। वह है—जगदम्बा का स्वरूप। अन्य रूपों के ध्यान से साधक को मन्त्र-सिद्धि मिलना तो दूर, उसकी अवश्य अधोगति हो जायेगी। अतः अश्विनी देवताओं के कई रूप होने पर भी जगदम्बा-स्वरूप ही हमारा रक्षक है।

अश्विनी में सृष्टि करने की 'चर-शक्ति' मेष-राशि में है, अतः वह अजा, लोहित-शुक्ल-कृष्ण-रूपा है। स्थिति करने की 'स्थिर-शक्ति' सिंह-राशि में है, अतः वह सिंह-वाहिनी व चक्र-धारिणी है। संहार करने और पुनः सृष्टि करने की 'उभय शक्ति' धनु-राशि में है, अतः वह वाराही एवं खड्ग-धारिणी है। ये ही अश्विनी के तीन जगदम्बा-स्वरूप हैं।

'चामुण्डा' का खड्ग-हस्ता के रूप में ध्यान करना विहित है, परन्तु खड्ग-हस्ता के प्रथम स्वरूप 'वाराही' के ध्यान के बिना चामुण्डा का ध्यान फल-प्रद नहीं होता। अतः 'वाराही'-यन्त्र में उनका पूजन करना आवश्यक है। पूजन के अन्त में—

'गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत-कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु वाराहि! त्वत् - प्रसादात् महेश्वरि ॥'

उक्त श्लोक-पाठ के साथ देवी के चरण-कमलों में तीर्थ समर्पित करें तथा उस तीर्थ का अपने अन्य एवं भक्त-जनों के शिरों पर प्रोक्षण करें। इससे देव-ऋण, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण से मुक्ति मिलती है। भगवद्-गीता के १५-वें पुरुषोत्तम नामक अध्याय में अश्विनी देवता की प्रशंसा की गयी है। महाभारत में 'नकुल' और 'सहदेव' अश्विनी देवता के ही अंश हैं।

योग-प्रक्रिया से विचार करें, तो भी अश्विनी का स्थान बड़ा ऊँचा है। जो मन के द्वारा ध्यान किया जाता है, वही वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। अतः मन और वाक्—इनके प्रवर्तक 'अश्विनी' हैं। कार्य करने में दोनों हाथों दोनों पैरों, उदर और लिङ्ग का साथ-साथ उपयोग होता है। वहाँ भी अश्विनी देवता का अनुग्रह अनिवार्य है। अश्विनी देवता ज्वाला-मालिनी हैं। अतएव सत्य-स्वरूपा हैं।

आकाश और पृथ्वी, ऋत और सत्य, वायु और अग्नि, सूर्य और सत्य योग - प्रक्रिया में यम, नियम, आसन के बाद प्राणायाम का स्थान है। अश्विनी देवता का सम्बन्ध हृदयस्थ नाड़ियों से है। कुम्भक प्राणायाम द्वारा ही हृदयस्थ नाड़ियों का चालन किया जा सकता है। हृदय-स्थान में एक सौ नाड़ियाँ स्थित हैं। उनमें एक ही नाड़ी परमात्मा का सम्बन्ध दिला सकती है। उसी नाड़ी का चालन अश्विनी देवता के अनुग्रह से होता है तथा ऊर्ध्व-केशी चामुण्डा माता का अनुग्रह भी हस्त-गत होता है।

अश्विनी देवता के साक्षात्कार के लिए प्राणायाम सदैव करते रहना चाहिये। सूर्य और चन्द्र की गति को रोकने से ही ज्ञानानन्द-मय अश्विनी देवता का उदय सुषुम्ना नाड़ी में होता है। तब जगन्माता की कृपा से साधक तीनों कालों का ज्ञानी हो जाता है। कहा भी है––

नव-दुर्गां महा-कालीं, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिकाम्।
त्रिकाल-ज्ञान-सम्पन्नां, नमामि भुवनेश्वरीम्॥

यह तो सभी साधक जानते हैं कि शक्ति के अनुग्रह के बिना शिव का चालन नहीं होता। परन्तु यही प्रश्न है कि वह 'शक्ति' है कहाँ? उसका चालन कैसे किया जाय? इस प्रश्न का समाधान भी अश्विनी द्वारा ही मिल जाता है। 'श्वा' का अर्थ है कुत्ता। हम देखते हैं कि कुत्ता एक जगह से दूसरी जगह यों ही दौड़ेगा; फिर थक जाने पर उसी जगह वापस आ जायेगा। यही उसकी मूल प्रवृत्ति है। इसी प्रकार जो साधक अपक्व है, वह भी 'श्वा' की तरह **'पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्'** के मार्ग में दौड़ता रहता है। अश्विनी देवता की कृपा मिल जाने पर वह श्व-प्रवृत्ति समाप्त होने लगती है; मन अपने अन्दर देखने लगता है; परमात्मा के जानने के लिए इच्छुक हो जाता है; अपने को 'मकार' के रूप में अर्थात् इस विशाल ज्ञान-सागर में एक बिन्दु की तरह समझने लगता है। तभी 'मु'-स्वरूपा स्कन्द माता के दर्शन के लिए वह अन्तर्मुखी बन जाता है।

अश्विनी स्वयं ज्ञान-रूपा है; अतः साधक को यथार्थ ज्ञान देती है। दश महा-विद्याओं का ज्ञान भी मिल जाता है। दश महा-विद्याओं के नाम हैं––

काली तारा षोडशी च, भुवनी भैरवी तथा।
छिन्नमस्ता च धूम्रा च, बगला गजिनी कलीम्॥

'गजिनी' 'मातङ्गी'-नाम से और 'कलीम्' 'कमला'-नाम से प्रसिद्ध हैं।

स्वधा-प्रवृत्ति वाली 'श्व' बुद्धि के नियन्त्रण से स्वाहा-प्रवृत्ति वाली 'अश्विनी' देवता का अनुग्रह मिल जाता है। जहाँ भी जो भी आहार मिलता है, उसे कुत्ता खा लेता है; जो कोई नया सामने आता है, उसे देखते ही भूँकने लगता है। अपनी रक्षा के लिए दूसरों को काटने के लिए दौड़ता है––ये तीनों बातें 'श्व'-प्रवृत्तियाँ हैं। इनसे छुटकारा पाने के लिए 'अश्व-मुखी' अश्विनी का अनुग्रह अनिवार्य है।

अपनी जीभ पर नियन्त्रण रखना सर्व-प्रथम कर्तव्य है। जो भी आहार जगदम्बा की सेवा में समर्पित हो, उसी को 'प्रसाद' के रूप में स्वीकारना चाहिए। जो मन्त्र गुरु-मुख से प्राप्त हो, उसी का जप करना चाहिए। साधक-मण्डली को छोड़कर अन्यों की बैठक में शामिल नहीं होना चाहिए। अपने मन और वाणी पर नियन्त्रण रखना साधक के लिए अत्यावश्यक है। जगदम्बा की तुष्टि के लिए सब कुछ बलिदान करने की प्रवृत्ति भी आवश्यक है।

'देवी-सूक्त' में जगदम्बा के स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है; परन्तु उस स्वरूप का प्रकाश तथा विमर्श अश्विनी की कृपा से ही मिल सकेगा। अतएव चामुण्डा का ध्यान भी निम्न श्लोक से ही करना श्रेयः-प्रद है—

'प्राधानिक रहस्य' की तात्त्विक समीक्षा

डा० जवाहरप्रसाद सिंह, गोरा मानसिंह, दरभंगा (बिहार)

'महा-लक्ष्म्यै च विद्महे सर्व-शक्त्यै च धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् ।।'

[हम महा-लक्ष्मी को जानते हैं और उन सर्व-शक्ति-रूपिणी का ही ध्यान करते हैं। वे देवी हमें ज्ञान-ध्यान में प्रवृत्त करें।]

श्रीदुर्गा-सप्तशती के 'प्राधानिक रहस्य' में महा-लक्ष्मी को 'त्रिगुण-मयी आद्या महा-शक्ति' के नाम से पुकारा गया है। यहाँ महा-शक्ति को 'महा-लक्ष्मी' नाम से सम्बोधित करने का बड़ा मार्मिक रहस्य है, जैसे दश-महा-विद्याओं में महा-लक्ष्मी (कमला) को दशम स्थान दिया गया है, जो उनकी विशिष्टता है। कमला को सदाशिव-विष्णु की महा-शक्ति कहने से उनकी वह विशिष्टता और बढ़ जाती है। पूर्ण-ब्रह्म परमेश्वरी महा-लक्ष्मी का समष्टि रूप दश महा-विद्या 'कमला' है।

यह एक रहस्य की बात है कि संख्या में १ से लेकर ९ तक के ही अङ्क आते हैं, जिनके आगे शून्य '०' अंकित कर देने से दस गुणा वृद्धि होती है। इस प्रकार 'शून्य' पूर्ण-ब्रह्म परमेश्वर सदा-शिव विष्णु है। १ से लेकर ९ वीं महा-विद्या का आयतन कमला ही हैं, जिनके साथ शून्य-रूप में सदा-शिव विराजमान हैं।

'प्राधानिक रहस्य' में वर्णित महा-लक्ष्मी का रूप उस समय का है, जब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, काल, पञ्च-भूत, मीमांसा, कणाद, तर्क, सांख्य, योग, वेद-वेदान्तादि शास्त्र और उसके ज्ञाता—कोई नहीं था, मात्र

(पृष्ठ १९ का शेषांश)

ऊर्ध्व-केशि विरूपाक्षि, मधु-शोणित-भक्षिणि !
तिष्ठ देवि ! शिखा-मध्ये, चामुण्डे! ह्यपराजिते ।।

'ऊर्ध्व-केशि'-शब्द से 'अश्विनी' द्वारा साधक की सृष्टि एवं संहार की प्रवृत्ति का उल्लेख किया गया है। यदि ये दोनों प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्व-मुखी हों, तो स्थिति की प्रवृत्ति भी अपने आप ऊर्ध्व-मुखी हो जाती है; एतदर्थ 'श्व'-प्रवृत्ति का नियन्त्रण हो तथा अश्व-प्रवृत्ति का विकास हो।

उपनिषदों में भोक्ता के रूप में अश्विनी देवता का ही चित्रण किया गया है :—

"आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च ।।
इन्द्रियाणि हयान् आहुः, विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रिय-मनो-युक्तं, भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।"

अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय, मन आदि से युक्त जो बुद्धि-तत्व या ज्ञान-तत्व अर्थात् 'अश्व-मुखी' प्रवृत्ति है, वही अश्विनी भोक्ता है। शरीर तो जड़ है, इसलिए वह भोक्ता नहीं हो सकता। शरीर के अन्दर जो जीवात्मा है, उसके द्वारा परमात्मा ही सभी काम करा लेता है। अतः कर्म करते रहना ही जीवात्मा का स्वरूप है—वही 'सुरथ' है। जीवात्मा द्वारा कर्म कराते-कराते उसे 'समाधि' पर पहुँचाना परमात्मा का ध्येय है—यही उसकी लीला है। एतदर्थ परत्मा के लिए संकोच-विकास, ज्ञान-अज्ञान, प्रकाश-अन्धकार आदि दो-दो प्रवृत्तियाँ साथ-साथ चाहिए। उन्हीं प्रवृत्तियों का जीता-जागता स्वरूप 'अश्विनी' है।

SRI LALITA MAHILA SAMAJ
TIRUEENGOIMALAI B.O.
MANAMBEDU S.O., MUSIRI TK,
TRICHY Dt PIN 621 209
PHONE MUSIRI 61.

SAMAJA GURUDEV

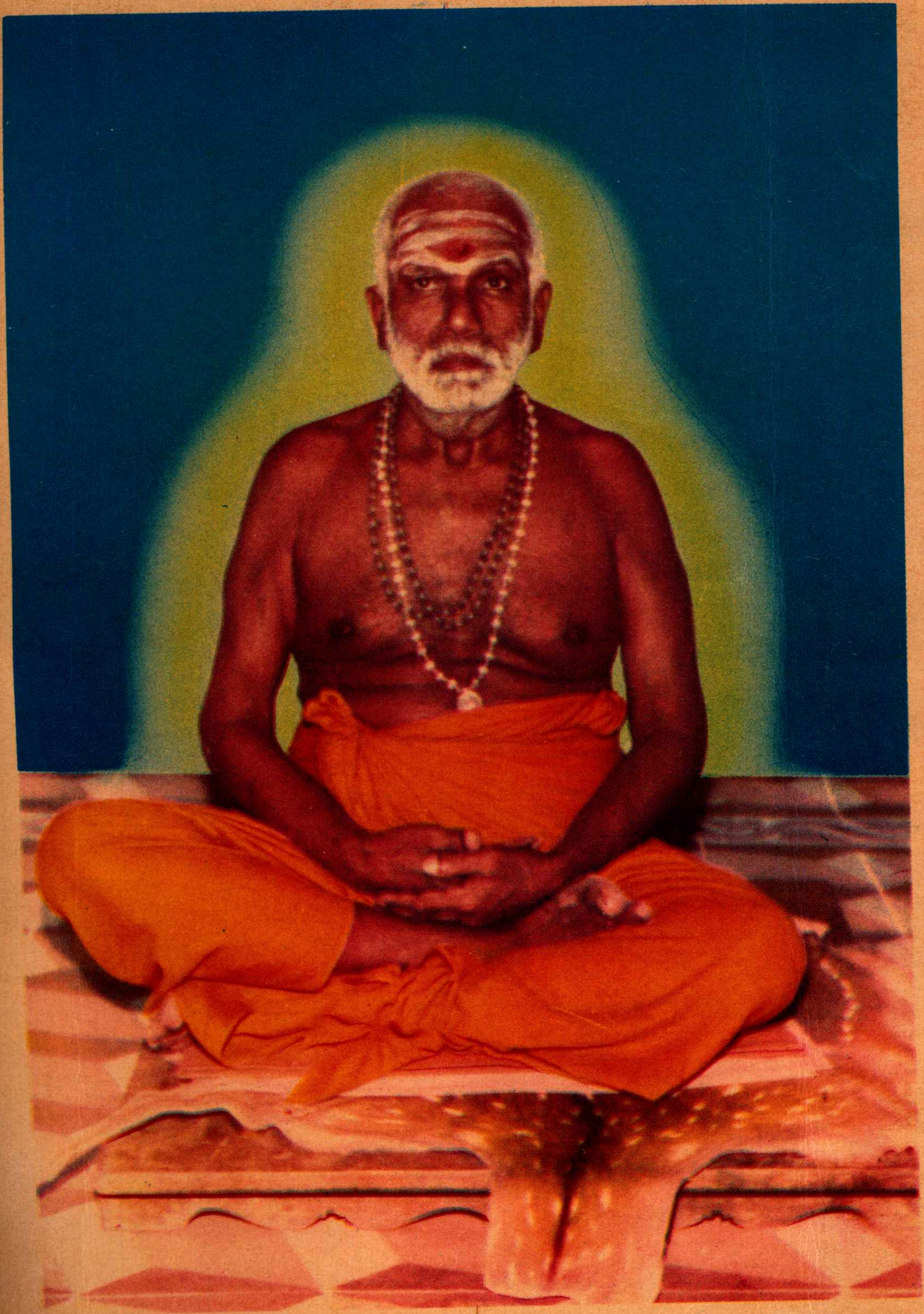

ஸமாஜ குருதேவர்

ஸ்ரீ லலிதா மகிலா சமாஜம்

निराकार भाव थे। उस समय दिन-रात्रि, पृथ्वी-आकाश, प्रकाश-अंधेरा, श्रोत्रादि इन्द्रियाँ, बुद्धिआदि अन्तः-करण कुछ भी नहीं था। एक-मात्र आद्या ही सर्वोपरि, सर्व-शक्तिमान्, सर्व-व्यापी, नित्य निरञ्जन, सृष्टि-कर्त्ता, पालन-कर्त्ता, संहार-कर्त्ता, विज्ञानानन्द-घन, सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, एक-रस, पूर्ण परमेश्वरी महा-लक्ष्मी थीं। उस समय महा-शक्ति को अपने अन्दर छिपाकर शुद्ध ब्रह्म का रूप धारण किए हुए थीं। अर्थात् उस समय न तो वे पुरुष थीं और न प्रकृति।

मातु-लिङ्गं गदा खेटं पान-पात्रं च बिभ्रती। नागं लिङ्गं योनिं च बिभ्रती नृप! मूर्द्धनि॥
तप्त-काञ्चन-वर्णाभा तप्त-काञ्चन-भूषणा। शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा॥

मातुलिङ्ग :—बिजौरा का फल, जिसे अग्नि पुराण में नीबू कहा गया है। यह कर्म-राशि का प्रतीक है। दूसरे शब्दों में इसे इच्छा-शक्ति, वाक्-शक्ति की संज्ञा दी गयी है। इस शक्ति द्वारा महा-लक्ष्मी सृष्टि का कार्य सम्पन्न करती हैं, जो 'ऐं' बीज एवं तमात्मक रज से सम्बन्धित है।

गदा :—क्रिया-शक्ति की द्योतक है। जिसका सम्बन्ध सत्वात्मक रज 'ह्रीं' बीज से है। दूसरे शब्दों में यह महा-लक्ष्मी की माया-शक्ति है, जिससे पालन का कार्य सम्पादित होता है।

खेट :—यह ज्ञान-शक्ति का द्योतक है, जिसका सम्बन्ध सत्वात्मक तम **'क्लीं'** बीज से है। इसे काम-शक्ति, मकर-केतन भी कहते हैं। इस शक्ति द्वारा महा-लक्ष्मी संहार का कार्य सम्पन्न करती हैं।

पान-पात्र :—यह सत्-चित्-आनन्द—इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति—सृष्टि, पालन, संहार अर्थात् तुरीया वृत्ति को व्यक्त करता है।

नाग :—यह महा-काल आदिनाथ का द्योतक है।

लिङ्ग :—यह पुरुष-वाचक परमात्मा के सभी रूपों का परिचायक है।

योनि :—आद्या जब जगत्-पिता को पैदा करती हैं, तब उनके सिर पर योनि अवस्थित रहती है। यथा :—**'अहं सुवे पितरस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वतः।'**

लेकिन 'प्राधानिक रहस्य' के शब्दों में अभी महा-लक्ष्मी स्वयं ही ब्रह्म-स्वरूप हैं। अतः उनके ही सिर पर योनि है, जो प्रकृति की द्योतक है।

आद्या के शरीर का वर्ण उस समय तपाये हुए सुवर्ण की भाँति है और तपाये हुए सुवर्ण के ही उनके भूषण हैं।

सृष्टि के आरम्भ यानि महा-प्रलय के बाद महा-शक्ति महा-लक्ष्मी (कमला) ने जब सम्पूर्ण जगत् को शून्य देखा, तब उनकी माया-शक्ति ने क्रिया-शील होकर 'एकोऽहं बहु स्याम'—मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ, इसका सङ्कल्प ले लिया। इस सङ्कल्प-शक्ति या क्रिया-शक्ति या माया-शक्ति को परमेश्वरी 'भुवनेश्वरी' के नाम से पुकारा जाना युक्ति-सङ्गत तथा 'देवी-भागवत' के अनुसार सर्वोपरि मान्य एवं वैज्ञानिक है।

दश-महाविद्या में भुवनेश्वरी क्रिया-शक्ति की उपासना एकाक्षरी 'ह्रीं' (माया-वीज) से करने की पद्धति है किन्तु 'प्राधानिक रहस्य' की महा-लक्ष्मी की उपासना में 'ह्रीं' बीज का निर्देश नहीं है क्योंकि इस बीज का सम्बन्ध माया-शक्ति से है, न कि महा-शक्ति से। कुछ विद्वानों का कहना है कि माया-शक्ति का ही नाम महा-शक्ति, प्रकृति, विद्या-अविद्या, ज्ञान-अज्ञान आदि है। महा-शक्ति पृथक् नहीं है। उनका ऐसा कहना सत्य भी हो सकता है क्योंकि माया-शक्ति परमात्मा-रूपा महा-शक्ति की ही शक्ति है और वह जीवों को बाँधने के लिए अज्ञान या अविद्या से और उनकी बन्धन-मुक्ति के

लिए ज्ञान या विद्या-रूप से अपना स्वरूप प्रकट करती है। तब इनसे भिन्न कैसे रही ? पर जो माया-शक्ति को ही शक्ति मानते हैं और महा-शक्ति का कोई अस्तित्व ही नहीं मानते, वे तो माया के अधिष्ठान ब्रह्म को ही अस्वीकार करते हैं। इसलिए वे अवश्य ही माया के चक्कर में हैं।

'प्राधानिक रहस्य' की महा-लक्ष्मी की उपासना का प्रचलन विरल अवश्य है, लेकिन इनकी उपासना शुद्ध एक-रस ब्रह्म की है। इस उपासना से आद्या-शक्ति त्रिगुण-मयी परमेश्वरी की समष्टि-उपासना हो जाती है। इनकी उपासना शाक्त, शैव, वैष्णव, निर्गुण-सगुण तथा सभी सम्प्रदाय के साधक कर सकते हैं क्योंकि यहाँ महा-लक्ष्मी ब्रह्म की एक-रस समष्टि-रूप हैं। इन्हीं से विभिन्न व्यष्टि-उपासनाओं का चलन हुआ।

जहाँ तक महा-लक्ष्मी की समष्टि-उपासना का प्रश्न है, वह दशम महा-विद्या 'कमला' (महा-लक्ष्मी का समष्टि-रूप) के एकाक्षरी बीज-मन्त्र 'श्रीं' से किया जाना विधि-सम्मत एवं वैज्ञानिक जान पड़ता है। अथवा 'मन्त्र-कोष', पृष्ठ ३१२ में उल्लिखित 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः जगत्-प्रसूत्यै नमः' से किया जाना अति श्रेयस्कर होगा।

सदा-शिव विष्णु पूर्ण-ब्रह्म हैं, जिनकी महा-शक्ति महा-लक्ष्मी (कमला) हैं। इन्हें ही अलग-अलग पुराणों में अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। वास्तव में सभी एक ही आद्या के अलग-अलग नाम-भेद हैं।

'श्री'-शब्द की व्याख्या कई जगह प्रसङ्गानुसार लक्ष्मी, सरस्वती, सम्पद्, शोभा आदि भिन्न-भिन्न अर्थों में की गयी है। वही परम प्रकृति-रूप आदि-शक्ति है क्योंकि शास्त्रों में इन्हें ही आद्या कहा गया है। यथा—"**त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी।**" अर्थात् तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं ईश्वरी हो।

'श्री'-शब्द की उत्पत्ति से भी यही भाव स्पष्ट होता है—"**श्रियते सर्वैरिति श्रीः**" अर्थात् 'श्री' शब्द 'श्रि'-धातु से बनता है, जिसका अर्थ होता है 'सेवा करना'। 'आङ्'-उपसर्ग के योग में इसका अर्थ होता है आश्रय करना। कभी-कभी बिना उपसर्ग के, केवल धातु-मात्र भी सामर्थ्य से उप-सर्ग युक्त अर्थ का बोध कराती है। यथा—'**श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि**' (श्रीमद्-भागवत, १०।३१।) अर्थात् लक्ष्मी निरन्तर यहाँ वास करती है। इस प्रकार सभी से सेवित एवं सभी का आश्रय होने से भी 'श्री' शब्द से यहाँ पर 'आदि-शक्ति' ही कही गई है, जो सम्पूर्ण जगत् का आधार एवं आश्रय भी है। यथा—

आधार-भूता जगतस्त्वमेका, सर्वाश्रयाखिलमिदं जगद्,
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या।

अर्थात् 'जगत् का आधार-स्वरूप एक तुम्हीं हो। सबका आश्रय होकर (तुम्हीं) इस सारे जगत् में व्याप्त हो। तुम्हीं परमा प्रकृति आद्या महा-शक्ति हो।'

'पद्म-पुराण' में गौरी-शङ्कर-सम्वाद में शङ्कर भगवान् स्पष्ट कहते हैं कि 'श्री माता महा-लक्ष्मी जगत् की अधीश्वरी और नित्य कल्याण-मयी हैं। उनके हाथ-पैर, नेत्र, मस्तक और मुख सब ओर व्याप्त हैं। वे भगवान् नारायण सदाशिव विष्णु की महा-शक्ति सम्पूर्ण जगत् की माता सबको आश्रय प्रदान करनेवाली हैं। स्थावर-जङ्गम-रूप सारा जगत् उनके कृपा-कटाक्ष पर ही निर्भर है। विश्व का पालन-संहार उनके नेत्र खुलने और बन्द होने से ही हुआ करता है। वे आद्या महा-लक्ष्मी (कमला) ही सबकी आदि, त्रिगुण-मयी, त्रैलोक्य-मोहनी परमेश्वरी हैं।'

उपर्युक्त तथ्यों से 'प्राधानिक रहस्य' की समष्टि-उपासना में एकाक्षरी बीज 'श्रीं' ही उपयुक्त जान पड़ता है। लेकिन जब क्रिया-शक्ति को प्रधान मानकर उपासना की जाय, तो एकाक्षरी माया-बीज '**ह्रीं**' से उपासना करना श्रेयस्कर होगा।

बगला-सम्बन्धी अनुसन्धानात्मक विवेचन

'विश्व-विजय-पञ्चाङ्ग', सं० २०४२-४३ में 'बगलामुखी मन्त्र से सम्बन्धित अनुसन्धानात्मक विवेचन' शीर्षक एक लेख छपा था, जिसमें लेखक ने सभी आचार्यों व तन्त्र-ग्रन्थों को गलत बताया। यहाँ तक कि पंचांग के सम्पादक वयोवृद्ध ज्योतिषाचार्य श्री पं० हरिदेव जी त्रिवेदी की यह लिखकर हँसी उड़ाई कि वे तो तन्त्र-ज्ञान में शून्य हैं, अदीक्षित हैं, वे क्या जानें ! मैंने १०-४-८६ को त्रिवेदी जी को पत्र भी लिखा किन्तु वे कदाचित् 'कापालिक' सिद्धनाथ नाम से घबड़ा गए और न मेरे पत्र को प्रकाशित किया, न मुझे कोई उत्तर दिया। विवश होकर अब 'चण्डी' द्वारा निवेदन कर रहा हूँ।

१—कापालिकजी ने 'बगला'-शब्द को 'अर्गला' का अपभ्रंश बताया है। कहा है कि 'अर्गला' का मतलब है जंजीरा और जंजीरा का अर्थ है बाँधना। स्पष्ट ही यह उनकी मनमानी व्याख्या है। इसी प्रकार एक कम पढ़े-लिखे व्यक्ति की व्याख्या है—

'ब' से ब्रह्मास्त्र-विद्या, 'ग' से गारुड़ी विद्या और 'ला' से स्थिर लक्ष्मी-रूपा तथा 'मुखी' से इन तीनों शक्तियों की समष्टि !

इस प्रकार के अनर्गल अर्थों से लोग भ्रम में ही पड़ते हैं।

२—बगला को सूर्योदयी व अस्त-कालीन लालिमा-मयी बताया है किन्तु सूर्योदयी आभा तो लाल होती है, जब कि बगला की पीताभा सर्व-विदित है।

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

'महा-लक्ष्मीर्महा-राज ! सर्व-सत्व-मयीश्वरी; निराकारा च साकारा सैव नानाभिधान-भृत्।
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ॥'

अर्थात् हे महा-राज ! महा-लक्ष्मी सर्व-सत्व-मयी तथा सत्वों की अधीश्वरी हैं। वे ही निराकार और साकार-रूप में रहकर नाना प्रकार के नाम धारण करती हैं। सगुण-वाचक सत्य, ज्ञान, चित्, महा-माया आदि नामान्तरों से इन महा-लक्ष्मी का निरूपण करना चाहिए। केवल एक नाम से अथवा अन्य प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उनका वर्णन नहीं हो सकता।

निष्कर्षतः यह कहना ठीक ही होगा कि 'प्राधानिक रहस्य' के समष्टि-रूप की उपासना तो कहीं देखने में नहीं आती, लेकिन व्यष्टि-रूप उपासना में किसी रूप को महा-लक्ष्मी मानकर पूजन किया जाय, तो उनकी उपसना हो जाती है।

समष्टि-उपासना में नवार्ण मन्त्र भी सटीक जान पड़ता है क्योंकि महा-शक्ति से व्यष्टि तमो-गुणी महा-काली (ऐं), व्यष्टि सतो-गुणी महा-सरस्वती (क्लीं) और रजो-गुणी समष्टि महा-लक्ष्मी (ह्रीं) का प्रादुर्भाव हुआ है। जैसा कि 'प्राधानिक रहस्य' में ऋषि कहते हैं—

पुनः सृष्टि में रज + तम (ऐं)—ब्रह्मा-सरस्वती
पालन में—रज + सत् (ह्रीं)—लक्ष्मी-विष्णु
संहार में—सत + तम (क्लीं)—गौरी-शङ्कर।

अन्त में साधकों से आग्रह है कि इस विषय में अपना विचार 'चण्डी' द्वारा देकर जिज्ञासा का समाधान करने में सहयोग प्रदान करेंगे।

३—त्रिवेदी जी ने निम्न मन्त्र उद्‌धृत करते हुए लिखा था कि इसके प्रयोग से किसी वाद-विवाद में स्वामी करपात्र जो को सभा विसर्जित करनी पड़ी—

'ॐ ह्लीं बगलामुखि'''नाशय नाशय क्लीं ॐ स्वाहा।'

इस पर कापालिक जी की आपत्तियां हैं कि 'ह्लीं' का प्रयोग गलत है, 'नाशय नाशय' के बाद 'क्लीं' गलत है। इस सम्बन्ध में यह कहना उचित हो होगा कि किसी देवता का एक ही मन्त्र नहीं होता। मन्त्रों के आदि और अन्त में व्याहृति, बीज व पल्लव कामना-भेद से परिवर्तित हो सकते हैं। मन्त्र के अन्त में 'नाशय नाशय' पर अधिक बल है, अतः उसके बाद 'क्लीं' आ गया, तो उसमें क्या गलती है? फिर इस मन्त्र से त्रिवेदो जो के अभोष्ट की पूर्ति भो हुई, जिससे यह अनुभव से सिद्ध मन्त्र भी प्रमाणित हो गया। ऐसी दशा में 'क्लीं' की योजना सही हो है।

४—कापालिक जो ने मन्त्र-सिद्धि के लिए ५० नियम बताये हैं, जो व्यावहारिक दृष्टि से ठोक नहीं हैं। नियम तो कम-से-कम और साध्य होने चाहिए।

५—जितने अक्षर, उतने लाख के नियम से बगला के पुरश्चरण में ३६ लाख जप की बात कापालिक जी ने गलत बताई है और कहा है कि मात्र सवा लाख जप होना चाहिये। वास्तव में दोनों ही क्रम ठोक हैं। अपनो सामर्थ्य के अनुसार पुरश्चरण करना चाहिये। इस सम्बन्ध में उक्त नियम की हँसी उड़ाने का कोई तुक नहीं है क्योंकि उक्त नियम की सीमा है, जो सभी साधकों को ज्ञात है। अधिक अक्षरवाले मन्त्र 'माला-मन्त्र' व 'स्तोत्र'-रूप माने गये हैं। सामान्य—शत-नाम जैसे स्तोत्र का पुरश्चरण ११ हजार पाठ से हो जाता है। यदि स्तोत्र में एक हजार श्लोक हों, जैसे सहस्र-नाम में, तो मात्र एक ही हजार आवृत्ति से पुरश्चरण होता है।

अक्षर-संख्या के अनुसार जप का विधान देव-भाव की प्राप्ति के लिये है और सवा लाख कामना-सिद्धि के लिये। सिद्ध साधक के लिये ११ हजार जप ही पर्याप्त है।

६—कापालिकजो 'मेरु-तन्त्रोक्त' बगला-मन्त्र को इस आधार पर अशुद्ध ठहराते हैं कि उसमें 'ह्लीं' बीज का समावेश है। आपका कथन है कि स्थिरतावाले बीज के स्थान पर आकाश-तत्त्वीय अस्थिरता का बीज होना अप्रामाणिक है किन्तु उन्हें कदाचित् यह ज्ञात नहीं है कि आम्नाय व कामना-भेद से मन्त्र में इस प्रकार का परिवर्तन आवश्यक है। 'मेरु-तन्त्र' का मन्त्र उभय आम्नायात्मक है और सर्वथा शुद्ध है।

यदि कापालिक जी के तर्कानुसार 'ह्लीं' को अप्रामाणिक मानें, तो नवार्ण मन्त्र को भी अशुद्ध मानना होगा क्योंकि उसमें महा-लक्ष्मो के लिए 'श्रीं' न होकर 'ह्रीं' है और महा-काली के लिये 'क्रीं' न होकर 'क्लीं' है। स्पष्ट है कि उनके तर्क निराधार एवं सार-हीन हैं।

'ह्रीं' बीज भगवती की चौदह भुवनों के पालन करने की शक्ति-रूप का द्योतक है। इस प्रकार वह लक्ष्मी-रूप माना गया है। 'क्लीं' बोज के मूल में आकर्षणी व वशीकरण शक्ति है। भगवती जब किसी वस्तु का अपने में आकर्षण करती हैं, तो लौकिक दृष्टि से उसका संहार होता है। अतः काली का परिचायक उसे ठोक हो रखा गया है।

इस प्रत्यालोचना का उद्देश्य मात्र यही है कि साधक बन्धु इस प्रकार के 'अनुसन्धानात्मक विवेचन' से सावधान रहें और 'कापालिक'-उपाधि से भ्रमित न होकर गुरु-परम्परा से प्राप्त अपने मन्त्रादि पर दृढ़ रहना चाहिये।

[पृष्ठ ८ का शेषांश]

परम पूज्य झा जी ने 'आगम' शब्द की विद्वत्तापूर्ण विवेचना करते हुये ब्रह्म-दर्शन के बाद पुनः वापस आने में 'यदा यदा हि धर्मस्य…… सृजाम्यहम्' की प्रामाणिक व्याख्या प्रस्तुत की तथा तन्त्र-योग को राजाधिराज योग की संज्ञा दी। इस सन्दर्भ में कुण्डलिनी शक्ति की ब्रह्मरंध्र तक की कल्याणकारी आनन्द-मयी यात्रा तथा फिर से वापस आने के उदाहरण का उपस्थित बन्धुओं ने करतल-ध्वनि से स्वागत किया।

डा० धरणीधर मिश्र (उड़ीसा) ने विद्वत्तापूर्ण गवेषणात्मक शैली में श्रीजगन्नाथजी पर भद्रकाली सम्बन्धित अपने शोध-लेख को पढ़ा तथा प्राचीन ग्रन्थों में लिखित श्लोकों द्वारा श्रीबलभद्र जी, श्रीसुभद्रा जी तथा श्रीजगन्नाथ जी की मूर्तियों की निर्माण-शैली का भद्रकाली-स्वरूप प्रस्तुत किया। इस सन्दर्भ में आपने महा-प्रसाद में कारण के प्रयोग तथा अन्य प्रतीकात्मक साक्ष्य उपस्थित किये।

तदनन्तर योगाचार्य श्रीनित्यानन्द जी ने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में पातंजलि योग-पद्धति को शिव तथा शक्ति की उपासना बताया और तन्त्र-योग, राज-योग तथा हठ-योग द्वारा कुण्डलिनी शक्ति की उत्तम विवेचना प्रस्तुत की।

श्री निशान्तकेतु जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में शक्ति-साधना के सन्दर्भ में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तन्त्र-सम्बन्धी विभिन्न शब्दों के प्रचलित विकृत रूपों का, जो शक्ति-साधना से अनभिज्ञ जनता में कभी भय की भावना भरते हैं, तो कभी आश्चर्य की, मनोरञ्जक वर्णन किया। षट्-कर्म का 'षड्-यन्त्र', चक्र का 'चक्कर', गोरखनाथ का 'गोरखधन्धा' तथा 'फट्' का फट्कार में विकृतीकरण कैसे हुआ, इस ओर शाक्त-साधकों द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता पर आपने बल दिया। आपने श्रीदुर्गा-सप्तशती में वर्णित विशेष स्थलों की गम्भीर विवेचना करते हुए 'गो' शब्द से २७ शब्दों के जन्म और संस्कृत के ४९ अक्षरों द्वारा ४९ दिग्पालों, ४९ पवनों की प्रतीकात्मकता प्रकट करते हुए बताया कि देवनागरी के अक्षर स्वयं में ही मन्त्र हैं तथा 'अक्षर' के कभी न नष्ट होने के कारण उन्हें ब्रह्म का भी उत्पादक निर्दिष्ट किया। रुद्राक्ष की महत्ता पर भी आपने प्रकाश डाला।

अन्त में स्वामी श्री अखिलेश जी ने अपने भाषण में अमेरिका में उनसे किये गये एक जिज्ञासु के इस प्रश्न का उत्तर कि संसार पुरुष-मय है अथवा स्त्री-मय, देते हुये बताया कि सभी प्राणी प्रकृति-मय—स्त्री-मय हैं क्योंकि सभी के स्तन होते हैं। इसलिये 'शक्ति' की उपलब्धि ही 'सृष्ट' का लक्ष्य है। माँ के सन्दर्भ में आपने कहा कि जो पिता से परिचय कराये, वह माता है और जो ब्रह्म से परिचय कराये वह है जगदम्बा। शक्ति-रूपा नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुये आपने ताड़का को क्रोध का, मन्थरा को लोभ का तथा सूर्पणखा को काम का प्रतीक बताया और यह भी प्रतिपादित किया कि यदि ये नारी-पात्र न होते, तो रामायण लिखे जाने की परिस्थिति सम्भवतः न बनती। 'कौल' शब्द के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुये आपने कहा कि धर्म के सम्बन्ध में केवल यही शब्द शुद्ध सटीक है।

निर्भयता से ही शान्ति मिलती है, अतएव शान्ति के हेतु शक्ति की उपासना करने तथा शक्ति-अर्चन करने पर आपने बल दिया।

आपके अन्य सुझाव थे कि : (१) जिस प्रकार भारत देश का एक राष्ट्र-ध्वज, एक राष्ट्र-गीत, एक राष्ट्र-पशु, एक राष्ट्र-पक्षी, एक राष्ट्र-पुष्प तथा संविधान के अनुसार एक राष्ट्र-भाषा है, उसी प्रकार एक राष्ट्र-पुस्तक की भी घोषणा होनी चाहिये; (२) भारत सरकार को चाहिये कि विभिन्न देशों में बिखरे भारतीय धर्मग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ आदि प्राप्त की जायें। इस सन्दर्भ में आपने इटली में सहस्रों

भारतीय ग्रन्थों का होना तथा बहुत प्रयास करने पर कभी-कभी कुछ पृष्ठों की फोटोस्टेट कापियाँ ही प्राप्त होने का हवाला दिया; (३) स्वतन्त्रता-दिवस, गणतन्त्र-दिवस, होली, दिवाली, नव वर्ष आदि के बधाई पत्रों में शाक्त-साधना-सूचक शब्दों का प्रयोग हो; (४) हम सभो पंचाग्नि-वस्त्र (धोती) धारण करें, जो पाँच प्रकार की अग्नि को शान्त करती है; (५) शाक्त उपासना में हम निर्भयता प्राप्त करें तथा शाक्त बन्धु समाज एवं राष्ट्र की वर्तमान समस्याओं से बिरक्त न हों एवं राष्ट्र के कल्याण के लिये प्रयत्न करें; (६) यथा-सम्भव प्रदेशों में सुन्दर शाक्त भवनों का निर्माण करायें।

अन्त में पूज्य स्वामो जी ने भगवती का नाम-कीर्तन कराया और उपाध्यक्ष श्री उपाध्याय जी द्वारा सभी को धन्यवाद दिए जाने के बाद गोष्ठी अगले दिन के लिए विसर्जित हो गई।

तृतीय सत्र (सङ्गठन-गोष्ठी) : १६ नवम्बर १९८६

इस दिन भी पूर्वाह्न एवं अपराह्न में दो गोष्ठियाँ हुईं और अनेक बन्धुओं ने सङ्गठन-सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त किए, जिसके फल-स्वरूप '**बिहार शाक्त मण्डल**' अस्तित्व में आ गया। सब-सम्मति से निम्न महानुभावों की एक कार्य-समिति का गठन किया गया—

संरक्षक : १ श्री पण्डित गोविन्दशरण जी उपाध्याय एडवोकेट; २ महाराजकुमार डा० बी० पी० साही; ३ प्रो० पं० चन्द्रकिशोर जो पाण्डे 'निशान्तकेतु'; ४ श्री मधुसूदन जी चोधरी; ५ श्री पं० गङ्गाधर जी पाण्डेय, ६ श्री शम्भूशरण जो श्रीवास्तव।

सहयोगी : १ श्री पं० कृष्णमुरारी तिवारी, २ श्री विजय वत्स, ३ श्री पं० लक्ष्मण चौबे, ४ श्री पं० राजेन्द्र मिश्र, ५ श्री कुमार उमेशचन्द्र।

श्री शम्भुशरण जी श्रीवास्तव ने **बिहार शाक्त मण्डल**' के कार्यालय हेतु स्थान की सुविधा देने की घोषणा की। साथ हा शाक्त-साहित्य को पटना में सुलभ कराने की व्यवस्था करने का प्रस्ताव भी स्वीकृत किया गया। —विवरण-प्रस्तुत-कर्ता : श्री अमरसिंह, प्रयाग

'बिहार में शक्ति-साधना'

सभी पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि शीघ्र ही 'चण्डी कार्यालय' द्वारा '**बिहार में शक्ति-साधना**' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

इस पुस्तक के दो खण्ड होंगे। पूर्वार्द्ध खण्ड—'**इतिहास एवं प्रेरणा-दायक व्यक्तित्व**' होगा एवं उत्तरार्द्ध खण्ड—'**बिहार के शक्ति-पीठ और देव-मन्दिर**' होगा।

अतएव बिहार-निवासो बन्धुओं से अनुरोध है कि यदि उनके पास बिहार के शाक्त-साधकों एवं देवी-मन्दिरों के सम्बन्ध में कोई भी जानकारी हो, तो उसे अवश्य शीघ्र ही भेज दें। व्यक्तियों, मन्दिरों एव प्रतिमाओं के जो चित्र या फोटो भेजें, वे रंगीन न हों। बिहार के विभिन्न जनपदों के नक्शे (मान-चित्र) भेजकर उसमें वहाँ के देवी-स्थानों को दिखा सकें, तो और भी उपयोगो होगा।

इस पुस्तक में कुछ पृष्ठों में शाक्त-धर्म-सम्बन्धी 'अनमोल-विचार' प्रकाशित किये जायेंगे। जो बन्धु 'आर्थिक सहयोग' के रूप में २५), ५०) या १००) रु० भेजेंगे, उनके शुभ-नाम 'अनमोल विचार' के प्रस्तुत-कर्ता के रूप में प्रकाशित किये जायेंगे।

हमें विश्वास है कि धर्म-प्रेमी बन्धु अपनो सुविधानुसार आवश्यक रचनाएँ एवं 'आर्थिक सहयोग' देकर यश तथा पुण्य के भागी बनेंगे। सहयोग-राशि भेजने का पता—

शाक्त-साधना-पीठ, चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद—२११००६

वैभव-प्रतीक शक्ति-उपासना

श्री पण्डित भँवरलाल जोशी, रींगस, सीकर (राजस्थान)

एक बार ऋषि नारद रावण की राज्य-सभा में पहुँच गये। आतिथ्य-सम्पादन के पश्चात् राज्य-सभा में आसन मिला। सभा-विसर्जन के उपरान्त उनको नगर व राज-महल का भ्रमण करवाया गया। त्रिलोकी में विचरण करनेवाले नारद ऋषि से नगरी का वैभव छिपा नहीं रह सका और उन्हें उस वैभव के सामने वैकुण्ठ, इन्द्र-पुरी व कुबेर का वैभव भी तुच्छ लगा। उन्होंने सोचा कि 'यह वैभव किसके आशीर्वाद की महत्ता हो सकती है?' तो उनको याद आया—

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपम - गिरा। निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटि-कनकैः ॥
तवापर्णे कर्णे विशति मनु - वर्णे फलमिदं। जनः को जानीते जननि! जपनीयं जप-विधौ ॥

अर्थात् माँ भगवति! आपके मन्त्र का एक अक्षर भी कान में पड़ने मात्र से मूर्ख भी मधुर वाणी का वक्ता हो जाता है; गरीब मनुष्य भी स्वर्ण-मुद्राओं का मालिक होकर चिर काल तक निर्भय विहार करता है। मन्त्र के श्रवण का जब इतना फल है, तो विधिपूर्वक जप व पाठ में लगे रहने का फल कितना सुन्दर होगा! इसे देव-दानव, गन्धर्व क्या, स्वयं विधाता भी नहीं समझता होगा।

ऋषि ने ध्यान लगाया, तो उन्हें यह वैभव माँ की कृपा का ही फल मालूम हुआ। उन्होंने रावण का आदर-सत्कार ग्रहण कर वहाँ से छुट्टी प्राप्त की। फिर वे गुप्त वेश में लंका नगरी में १२ मास तक बने रहे।

लंका नगरी के अग्नि-कोण में उन्होंने माँ का एक मन्दिर देखा, जो 'निकुम्भला' नाम से विख्यात था। वहाँ त्रिपुर-सुन्दरी-सहित नवदुर्गा की प्रतिमाएँ विराजमान थीं एवं लंका-वासी व रावण परिवार-सहित प्रतिदिन वहाँ पूजा करने आते थे। उनकी अनुपस्थिति में उनके प्रतिनिधि पूजा-कार्य करते थे। नारद जी को फिर एक उक्ति याद आयी—

यः शास्त्र-विधिमुत्सृज्य वर्तते काम-कारतः, न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य-व्यवस्थितौ, ज्ञात्वा शास्त्र-विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

अर्थात् जो स्त्री-पुरुष शास्त्र को त्यागकर मनमानी करते हैं, वह न सिद्धि, न परम गति और न सुख प्राप्त करते हैं। अतः उक्त वस्तुयें प्राप्त करनी हों, तो शास्त्र-विधि से कार्य करना चाहिए।

ऋषि नारद ने देखा कि माघीय नवरात्र में काली-उपासना, चैत्र में लक्ष्मी-उपासना, आषाढ़ में सरस्वती-उपासना, आश्विन में दुर्गोपासना होती है एवं प्रतिदिन नवार्ण का जप होता है।

'अर्थ' यानी देवता और 'अनर्थ' यानी राक्षस दोनों ने मिलकर समुद्र-मंथन किया, उससे वैभव की उत्पत्ति (लक्ष्मी) हुई। इस माँ की कृपा से प्राप्त वैभव को कोई विरला ही 'अर्थ' यानी दैविक कार्यों में खर्च करता है। अन्यथा अनर्थ' यानी राक्षसी प्रवृत्तियों में तो ९० प्रतिशत व्यक्ति खर्च करते ही हैं।

रावण के वैभव से देव, गन्धर्व, यक्ष सभी परेशान थे। रावण का नाश करने के लिये ही देवर्षि नारद की बुद्धि में सरस्वती ने प्रवेश कर उनका उक्त कार्य-क्रम बनाया था। १२ मास में कार्यक्रम-अवलोकन के पश्चात् देवर्षि नारद प्रगट रूप में रावण के पास भिक्षार्थी बनकर गये और जब रावण ने उनका आतिथ्य कर आने का कारण पूछा, तो देवर्षि नारद ने 'भिक्षा' बताया। रावण ने कहा—

'माँगिये।' तब देवर्षि ने 'दुर्गा-पाठ' की भिक्षा माँगी। रावण इन्कार कर गया कि 'मैं दुर्गा-पाठ नहीं दे सकता।' पुनः देवर्षि नारद ने अध्याय, मन्त्र व अक्षर तक की याचना की लेकिन रावण नहीं माना। आखिर देवर्षि ने मात्रा माँगी, तो रावण ने सोचा कि यदि देवर्षि को भिक्षा न दी, तो आतिथ्य-सम्पादन पर आँच आयेगी। उन्होंने मात्रा देना स्वीकार कर लिया। देवर्षि ने 'ए' व 'इ' की मात्राएँ माँग लीं। अर्गला-पाठ में—**रूपं देहि जयं देहि यशो देहि।**' इस उक्ति में जब 'देह' पर से 'ए' की मात्रा हट जायेगी, 'द' रह गया, 'हि' पर से 'इ' की मात्रा हट जायेगी, 'ह' रह गया, यानी 'दह' रह गया, तो '**रूपं दह जपं दह**' ऐसा पाठ होने से रावण का धीरे-धीरे विनाश होगा।

रावण व नारद के उक्त प्रसङ्ग का रहस्य यह है कि शक्ति-रूपा 'सप्तशती' की उपासना में पाठ व जप की शुद्धता पर ध्यान रखना अत्यावश्यक है अन्यथा वैभव के स्थान पर विनाश भी सम्भव है।

'निकुम्भला' का उल्लेख भी ऊपर हुआ है। इस सन्दर्भ में निम्न वचन ध्यान देने योग्य है—

महा-विद्या महा-तन्त्री चण्डी सप्तशती च, मृत-सञ्जीवनी नाम पञ्चमं परि-कीर्तितम्।
षष्ठं चैव महा-चण्डी सप्तमं रूप-दीपिका, अष्टमं तु निकुम्भला योगिनी नवमी परा॥

अनुभवी साधकों द्वारा उक्त वचन की व्याख्या यह की गई है कि 'महा-विद्या', 'महा-तन्त्री' आदि नौ पाठ-क्रम श्रीदुर्गा सप्तशती के हैं, जो विविध सिद्धियों के प्रदायक हैं। यथा—

१ महा-विद्या—प्रथम, द्वितीय, तृतीय चरितों का क्रमशः पाठ। २ महा-तन्त्री—प्रथम, तृतीय, द्वितीय चरितों का पाठ। ३ चण्डी—तृतीय, द्वितीय, प्रथम चरितों का पाठ। ४ सप्तशती—द्वितीय, प्रथम, तृतीय चरितों का पाठ। ५ मृत-सञ्जीवनी—द्वितीय, तृतीय, प्रथम चरितों का पाठ। ६ महा-चण्डी—द्वितीय, प्रथम, द्वितीय चरितों का पाठ। ७ रूप-दीपिका—'रूपं देहि' श्लोक का नवार्ण के सम्पुट से प्रथम, तृतीय, द्वितीय चरितों के क्रम से प्रत्येक मन्त्र का सम्पुट पाठ। ८ निकुम्भला—'शूलेन पाहि नो देवि के' सम्पुट से द्वितीय, प्रथम, तृतीय चरितों के क्रम से प्रत्येक मन्त्र का सम्पुट पाठ। ९ योगिनी—प्रत्येक चरित के पूर्व सम्बन्धित योगिनियों का पाठ एवं प्रत्येक मन्त्र को 'वं शं षं' से सम्पुटित करना।

उक्त नौ पाठ-क्रमों के सम्बन्ध में सप्तशती के अनुभवी साधकों को शोधात्मक रूप से अपने विचार प्रकट करने चाहिये। तभी वैभव-प्रतीक शक्ति-उपासना से पूर्ण लाभ उठाना सम्भव हो सकेगा।

वाममार्ग

'वाम-मार्ग' किसी ऐसे ईश्वर का उपदेश नहीं करता, जो सुदूर स्वर्ग में बैठा हुआ समग्र ब्रह्माण्ड पर शासन करता हो।

'वाम-मार्ग' की दृष्टि में तो साधक-शरीर ही विश्व है, और उसमें जो आत्म-शक्ति स्थित है, वही उसका आराध्य-देव है।

साधना द्वारा साधक इसी आत्म-शक्ति का दर्शन करता है।

नवीन संस्करण : 'चण्डी' सदस्यों के लिये मूल्य ८) रु०

कौलिक-साधना

डा० अष्टभुजाप्रसाद पाण्डेय, भदैनी, वाराणसी

['गुप्तावतार' बाबाश्री के अन्यतम शिष्य स्व० पण्डित रमाशङ्कर पण्डया कौल-साधना के वैज्ञानिक पक्ष के मर्मज्ञ साधक थे। उनके द्वारा पूज्य बाबाश्री के उपदेशों पर आधारित जो शोध-निबन्ध 'शक्ति-पाचन', 'चरणाङ्किता कुण्डलिनी' आदि लिखे गए, उन्हें पढ़कर चकित रह जाना पड़ता है। यह सौभाग्य की बात है कि उन्हीं की परम्परा के उच्च कोटि के साधक श्री पाण्डेय जी का प्रस्तुत शोधात्मक लेख 'चण्डी' के पाठकों के लिए हमें प्राप्त हुआ है। आशा है कि पाठक बन्धु इससे अपनी साधना के विज्ञान-सम्मत पक्ष को जानकर अपना ज्ञान-वर्द्धन करेंगे।—सं०]

विश्व में सर्वत्र स्थित परम सत्ता को 'अकुल' नाम से इङ्गित किया जाता है। यह 'अकुल' अनन्त, अपार बोध-रूप है। इसमें तिरोधान का खेल समाप्त होने पर ऊर्मि और तरङ्ग का उन्मेष होता है। यह ऊर्मि-तरङ्ग स्पन्द-रूप अनुग्रह-रूपा है। यह स्पन्द चित्-शक्ति का उन्मेष है। यह चित्-शक्ति अविद्या के मल को साफ कर सांसारिक जीवन में एक अलौकिक एकात्म-वादी रूपान्तर लाती है, जिससे मन में 'वसुधैव कुटुम्बकं' की उच्च भावना जाग्रत् होती है।

अनादि काल से विकल्पों में पड़ा रहनेवाला जीव चित्-शक्ति के उन्मेष-रूपी अनुग्रह से अपनी विकल्प-दृष्टि को बदलकर अपने और संसार के नए भाग्य का निर्माण करता है। इस प्रक्रिया से साधक प्रमेय शुद्धि का अनुभव करता है और विराट् विश्व को अपने में ही देखने लगता है।

आत्मा और देह की पृथकता का अनुभव होने से साधक में चित्-शक्ति जाग्रत् होती है और बाह्य जगत् की आकर्षणी क्रिया उसे प्रभावित नहीं कर पाती। विसर्ग-शक्ति द्वारा बाहर दिखता संसार विन्दु के प्रभाव से भीतर आ जाता है। इस प्रकार संवित् देवी बाह्य जगत् को अपने में ग्रहण कर साधक को विषय-भोगों की निस्सारता का साक्षात् बोध करा देती है और विषयों का विषयत्व दूर हो जाता है। यही 'वीर-भाव' का भोग है।

उक्त भोग जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में होता ही रहता है और साधक के प्रत्येक कर्म आराधना-मूलक हो जाते हैं। इस प्रकार के साधक को 'महा-वीर' या 'वीरेश्वर' कहते हैं। पशु-भावापन्न जीव एक-एक दशा का भोग करता है किन्तु 'वीरेश्वर' एक ही साथ तीनों दशाओं का भोक्ता होकर द्रष्टा-भाव को प्राप्त करता है।

यह साधना सांसारिक समस्त व्यवहारों के माध्यम से साधना का निगूढ़ रहस्य खोल देती है। इस साधना में प्रत्येक कर्म आराधना-स्वरूप होता है। इसमें साधक को जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता है। सिद्धियों के उन्माद को शान्त रखना होता है। तभी साधक चिदाकाश-रूपी भैरवनाथ की कृपा प्राप्त कर प्रमाता के पद पर पहुँचता है।

प्रमेय-प्रमाण, प्रमाता-प्रमाण की ऐक्यावस्था होने पर साधक को आध्यात्मिक शिव-रात्रि में जाग कर अपने स्वरूप का अनुसन्धान करना होता है। स्वरूपानुसन्धान के अक्षुण्ण रहने पर साधक निरावरण प्रकाश-रूप परा शक्ति का अनुभव करता है। इसी को 'अनाख्या दशा' नाम से कहते हैं।

प्रकाश की धारा ही भासा-रूप से आत्म-प्रकाश करती है।

प्रमेय-संस्कार की निवृत्ति, प्रमेय-शून्य प्रमाण में स्थिति, प्रमातृ-भाव में प्रवेश के बाद परम शिव की दशा का बोध होता है। फिर आदित्यावस्था, रुद्रावस्था और भैरवावस्था के बाद विश्व-जननी परा-संवित् का आविर्भाव होता है।

परा-संवित् के दो रूप हैं—१ कृशा, २ पूर्णा। 'कृशा'-दशा अमावास्या के अन्धकार के सदृश है और 'पूर्णा' पूर्णिमा के चन्द्र के समान पूर्ण प्रकाश-मयी। इसके बाद साधक अन्धकार-प्रकाश, अज्ञान-ज्ञान, बन्धन-मोक्ष, दुःख-सुख में समत्व लाभ करते हुए इनके ऊपर उठ जाता है।

'ज्ञान-मार्ग' में ब्रह्म-भाव की शक्ति-हीन उपासना ही प्रचलित है, जब कि अद्वैत-वादी भगवान् शङ्कराचार्य स्वयं शक्ति के महान् उपासक थे। 'कौल-मार्गीय' अद्वैत साधक ही महा-शक्ति के जागरण द्वारा सम्पूर्ण जगत् को चिन्मय बनाता है। वह महाकाल एवं महा-शक्ति के सम्बन्ध का ज्ञाता होता है और परा-संवित् के रहस्य का अनुसन्धान करता है। यही कौल साधक 'कुल-भूषण' की संज्ञा प्राप्त करता है।

'कौल-साधना' में योनि-मार्ग, ज्वाला-मार्ग, मणि-मार्ग के बाद विद्या-अविद्या-रूपी चित्-गुरु के चरण-द्वय हैं—एक आरोहण-मय, दूसरा अवतरण-मय। इनके संघर्षण से एक नई ऊर्मि उत्पन्न कर साधक एक-ध्रुवी शक्ति द्वारा विश्व-कल्याण में लग जाता है, जिससे प्रकृति का निर्मलीकरण होकर विश्व-चेतना की नई सभ्यता का उदय होता है।

सृष्टि, स्थिति, लय, प्रति-लय एवं अनुग्रह के बाद नवीन सृष्टि के रहस्य ज्ञात होते हैं। विश्व में सहयोग, सहकार, सह-अस्तित्व आदि की भावना पुष्ट की जाती है। फिर मानव जीवन में सृष्टि, स्थित, लय का समन्वय होकर अनेक कलाओं का विकास होता है।

'वीरेश्वर'-भाव की यह साधना तन्त्र की सर्वोच्च साधना है। इसमें भगवती काली एवं भगवती दुर्गा को पक्ष-वत् प्रयोग करनेवाले भगवान् शरभ शालुवाय के आश्रय में रहकर कोटि-भुजावाले महा-भैरव एवं महा-भैरवी की सहायता से भगवान् अर्द्ध-नारीश्वर का साक्षात्कार करते हैं। पुं एवं स्त्री-भाव को सशक्त बनाकर अपने पशु-भाव को दिव्य बनाते हुए समस्त मानव-समाज को दिव्य बनाया जाता है। इस साधना का लक्ष्य अज्ञात रूप से विश्व एवं ब्रह्माण्ड की सेवा करना है। इसमें सिद्धियों का प्रदर्शन और काम्य प्रयोग वर्जित है।

ज्योतिष अनुसन्धान पत्रिका

उक्त शोध-पूर्ण पत्रिका में विख्यात ज्योतिर्विदों के अनुभव, शोध-कार्य, विचार-दोहन तथा प्राचीन ज्योतिष शास्त्रों की सरल व्याख्या रहती है। ज्योतिष व हस्त-रेखा पर सरल पाठ दिये जाते हैं, जिन्हें पढ़कर कोई भी ज्योतिष का ज्ञाता हो सकता है। व्यापारियों के लिये व्यापार-भविष्य, कृषकों के लिये मौसम-भविष्यवाणी तथा सामान्य पाठकों के लिये राशि-फल दिया जाता है। अतः पत्रिका सामान्य पाठकों से लेकर विद्वानों तक के लिये उपयोगी व संग्रहणीय है। वार्षिक चन्दा पन्द्रह रुपये मात्र निम्न पते पर भेजें—ज्योतिष अनुसन्धान पत्रिका, छंगाणी स्ट्रीट फलोदी (राजस्थान)—३४२३०१

जिज्ञासु के पत्र

ये सिद्धि-प्रद स्थान कहाँ हैं ?

अस्ति मर्त्ये महा - पुण्या पवित्रा दक्षिणापथे । नदी गोदावरी नाम प्रसिद्धा जाह्नवी यथा ।।
दक्षिणे च तटे तस्या कदली-नगरं परम् । तस्य दक्षिणतः शैलः सर्व - लोकेषु विश्रुतः ।।
नाम्ना कृष्ण-गिरिश्चेति दृश्यते सर्व-मङ्गले! सुप्रसिद्धाऽम्बिका-नाम-ग्रामस्तस्यास्ति सन्निधौ ।।
तत्राप्युदकमालोक्य परीक्षयेत् सुरार्चिते ! गृहीत्वा शुष्क-वंशं तु क्षिपेत् तोयस्य मध्यतः ।।
जायते हरितं स्निग्धमहो-रात्रं निश्चितम् । मुञ्चत्यंकुर - पत्राणि दृश्यते तन्मनोहरम् ।।

'रसार्णव', पटल १२, २३६-२४० के उक्त श्लोकों का अर्थ है कि दक्षिणापथ में महा-पुण्य-प्रदा पवित्र गोदावरी नदी गङ्गा के समान प्रसिद्ध है। उसके दक्षिण-तट पर 'कदली-नगर' है। उसके दक्षिण में सभी लोकों में प्रसिद्ध 'कृष्ण-गिरि' पर्वत दिखता है। पर्वत के समीप सुप्रसिद्ध 'अम्बिका' नामक गाँव है। हे सुरार्चिते ! यहाँ के जल (कोई विशेष कुण्ड होना चाहिये) को देखकर उसकी परीक्षा करे। सूखा बाँस लेकर उस जल में डालने से वह एक दिन-रात में निश्चय ही स्निग्ध और हरा हो जाता है तथा उसमें अंकुर और पत्ते निकल आते हैं।

अस्ति गोदावरो नाम महाराष्ट्रेऽति विश्रुता । तस्या उत्तर-भागे तु सह्याद्रिः पुण्य-पर्वतः ।।
तत्र माता-पुरं नाम प्रसिद्धं देवता-गृहम् । तस्मादुत्तरतो देवि ! कम्पाख्यं नगरं परम् ।।
तत्र कम्पेश्वरो देवस्तत्रास्त्युष्णोदकं ध्रुवम् । प्रणोताख्या नदी तत्र स्नात्वा वै साधकोत्तमः ।।
पश्चादुष्णोदके कुण्डे विधिं कुर्याद् यथोदितः ।।

वहीं २६०-२६३ श्लोकों के अनुसार महाराष्ट्र में सुप्रसिद्ध गोदावरो नदी के उत्तर में 'सह्याद्रि' नामक पवित्र पर्वत है। वहाँ 'मातापुर' नामक प्रसिद्ध देव-स्थान (देवो-स्थान भी सम्भव है) है। इसके उत्तर में 'कम्प' नामक नगर है। वहीं 'कम्पेश्वर देव' (शिव-मन्दिर होना चाहिये) हैं। वहीं निश्चित रूप से उष्णोदक (गरम पानो का कुण्ड) है। उष्णोदक कुण्ड के समीप ही 'प्रणीता' नामक नदी है। उत्तम साधक इसमें स्नान करके 'उष्णोदक कुण्ड' में कहे अनुसार क्रिया करे।

उपरि-वर्णित स्थानों में विशिष्ट आध्यात्मिक और रासायनिक क्रियाओं की सिद्धि सम्भव है। यदि किन्हीं महानुभाव को इन स्थानों की जानकारी हो, तो कृपया पूरे विस्तार से लिखकर 'कौल-कल्पतरु' चण्डी में प्रकाशित करायें। —भैरवानन्दनाथ, १०८ चकरा घाट, सागर २ (म० प्र०)

नए प्रकाशन

१ परमानन्द तन्त्रम् : मूलमात्र, सौभाग्यानन्द-सन्दोह संस्कृत टीका **६६)**
२ नित्या-षोडशिकार्णव : मूल-मात्र, ऋजु-विमर्शिनी एवं अर्थ-रत्नावली टीका **६६)**
३ हिन्दी मन्त्र-महार्णव : देव-खण्ड १४०), देवी-खण्ड १४०), मिश्र-खण्ड **८०)**
४ बृहत् तन्त्रसार : मूलमात्र, संस्कृत में **१००)**
५ श्री हनुमत् उपासना : सङ्कलन-कर्त्ता—श्री राधारमण दुर्वार **१५)**
गुरु गोता...५), भगवान् गोपीनाथ जी कश्मोर ५), निगमागम-समन्वय ३०)
सप्तशती-सर्वस्वम् ६०), श्रीगुरु-तत्वम् एवं पादुका-पञ्चकम् २०)

कैथोलिक पीठ 'वैटिकन' में भगवान् शिव

श्री ठाकुर अमरसिंह, बाँस मण्डी, प्रयाग (उ० प्र०)

यह नहीं कि हमारी प्राचीन संस्कृति तथा 'सनातन धर्म' की शब्दशः सत्यता, उच्चता प्रमाणित करने के लिए आधुनिक युग में साक्ष्यों की कोई कमी है, वरन् हमारे राष्ट्र की शासन-व्यवस्था में यह बहुत बड़ी कमी है कि जब सारा विश्व सत्य-असत्य प्रत्येक ढंग से अपनी संस्कृति की उत्कृष्टता प्रमाणित करने में गर्व का अनुभव करता है, हम अपनी संस्कृति एवं धर्म की सत्य-सार्वभौमिकता भी प्रकट करने में संकोच करते हैं।

इसी सन्दर्भ में 'चण्डी' के पौष, २०४२ (जनवरी, १९८६) के अङ्क, पृ० १९ में आपने पढ़ा कि किस प्रकार सुदूर-स्थित मिश्र में नील सरित के तट पर एक भारतीय राज्याधिकारी को भगवती दुर्गा के एक अति प्राचीन विग्रह के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अब देखें 'नार्दर्न इण्डिया पत्रिका', प्रयाग के १६ सितम्बर, १९८६ के पर्यटन-परिशिष्ट में प्रकाशित एक परिवृत्त—

'...हिन्दू संस्कृति का साधारण ज्ञान रखनेवाला पर्यटक 'वैटिकन' जाकर आश्चर्य में डूब जाता है। यह ईसाई कैथोलिक पाण्टिफ पीठ इटली की राजधानी रोम में एक वर्ग-मील में विस्तृत स्वतन्त्र राष्ट्र है, जिसे भारत-समेत विश्व के सभी राष्ट्रों की मान्यता प्राप्त है।

आश्चर्य तब होता है, जब आप वैटिकन का सुप्रसिद्ध संग्रहालय देखते हैं, जहाँ ईसा के जन्म के शताब्दियों पूर्व की अलभ्य, अमूल्य निधियाँ संग्रहीत हैं। उन अति प्राचीन संग्रहीत निधियों में हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित होता है उस भव्य '**शिव-लिङ्ग**' की ओर, जो एक अत्यन्त सुसज्जित मञ्च पर स्थापित है।

पर्यटक के यह पूछने पर कि क्या यह शिव-लिङ्ग भारत से लाया गया है, वैटिकन का गाइड सम्पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ बताता है कि वह '**शिव-लिङ्ग**' इटली का ही है तथा एट्रस्कन लोगों का उत्तराधिकारी-स्वरूप है, जो ईसा से पाँच शती पूर्व वहाँ रहते थे...।'

अब 'एट्रस्कन' लोगों का परिचय एल० मेरी बार्क की साइक्लोपीडिया के ८०वें संस्करण से लें—

'ये लोग एशिया माइनर (वर्तमान टर्की) से लगभग ९०० वर्ष ईसा पूर्व इटली में आए थे, जो ई० पू० पाँचवीं शती तक अपनी संस्कृति की पराकाष्ठा को पहुँच गए थे।'

कल्पना करें उस विस्तृत काल-खण्ड की, जब टर्की, इटली, मिश्र प्रभृति देशों में ही नहीं—मेक्सिको (पाताल!) आदि देशों में भी, जहाँ उत्खनन से हमारे वैदिक देवी-देवताओं के मन्दिर, मूर्तियाँ अब भी प्राप्त होती हैं, अनश्वर सनातन धर्म का अखण्ड साम्राज्य था। वेदों को निरर्थक ही 'अपौरुषेय' तथा हमारे धर्म को अनर्गल ही 'सनातन' धर्म की संज्ञा नहीं दी गई।

इसमें सन्देह नहीं कि 'सनातन धर्म' के पुनर्जागरण, पुनः स्थापन की आवश्यकता विश्व-कल्याण हेतु जितनी आज है, उतनी कभी न थी।

शक्ति का अनुभव होता है। सोता हुआ मनुष्य जब जागता है, तब उसमें क्या प्रकट होता है? प्रलोभन! पर विजय कौन करता है? एक कोटि का मनुष्य अपने से उन्नत कोटि में कैसे जाता है?

जिस आश्रय से व्यक्ति में ऊर्ध्व-गामिनी उन्नति-गति उत्पन्न होती है, उसका कारण अवश्य कोई 'शक्ति' होगी। उस 'शक्ति' का कोई व्यक्त रूप अवश्य होगा, यही 'बीज' है। गुरु लोग इसी को अपने में बोने की सलाह देते हैं। यही सलाह 'मन्त्र' है। और उस मन्त्र-बीज के विस्फोट में जो 'शक्ति' प्रकट होती है, वही 'दैवत' है। उससे प्रकट हुई गति उन्नति है। और वह गति अपने में गुरु-तत्व को उत्पन्न करती है, उसे ही 'सिद्धि' कहते हैं। गुरु-तत्व इसलिए सदैव परम सिद्ध-तत्व है, उसमें सर्व-पूर्ति-मय पूर्ण-कामत्व है और वह मुक्त होते हुए भी सदा युक्त (एवर फिट) है। अपनी इस सर्वदा योग्यता के कारण वह स्थायी (एटर्नल) है। यह तत्व ही इस विश्व का अलभ्य अमूल्य खजाना है। यह किसी व्यक्ति में नहीं मिलता। श्रीगुरु व्यक्ति-रूप से सलाह (मन्त्र) दे, वह 'दीक्षा' है। ध्येय तत्व-रूप से उस 'शक्ति' का अपने अस्तित्व में उदय होना ही 'साक्षात्कार' है। अनुभव बिना तो मात्र कल्पना ही रह जाता है, और अनुभव प्रयोग बिना नहीं हो सकता।

मन्त्र का विस्फोट और ऊर्ध्व-गति

अब यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है। गुरूपदिष्ट मन्त्र-बीज के विस्फोट में जो 'शक्ति' उत्पन्न होती है, उसमें से गति और तत्व हमको साक्षात्कार की ओर ले जाने के बदले उन्नत न करके अवनत कर पतन की ओर क्यों प्रेरित करते हैं? और उससे बचने का उपाय क्या है?

पहले तो मन्त्र का विस्फोट होना ही कठिन है। वह शून्य में गति-संघर्षण बिना नहीं हो सकता। शून्य में निद्रा, भय आदि सताते हैं। जबर्दस्ती जागा जाय, तो चिद्-भाव छूट जाकर मात्र मशीन-वत् जप-गति रह जाती है, प्रेम-भाव का चुम्बक लुप्त हो जाता है और उसी के साथ-साथ परा-जीवन-विद्युत् भी। यहाँ हमको अपने दूसरे उदाहरण से मदद लेनी होगी। लौह चुम्बक शून्य में कुण्डाले की फिरती हुई गति द्वारा शून्य-संघर्षण, उसके कटने, जलने, दबाव व विस्फोट से विद्युत् का दबाव व गति व उसका उपयोग।

जैसे-तैसे यदि मन्त्र का विस्फोट हुआ भी, तो उसमें प्रकट होती हुई शक्ति हमको किस दिशा में प्रेरित करती है? यह प्रश्न हम उन्हीं पाठकों से कर सकते हैं, जिनको इसका अनुभव है। क्या वह शक्ति ऊर्ध्व-गामिनी होती है? यदि ऊर्ध्व-गति का अनुभव साधक को होता भी है, तो क्षणिक क्योंकि तज्जनित सिद्ध 'शक्ति' साधक में तीव्रोन्माद उत्पन्न कर उसके मन को तमावर्तन में डुबा देती है, जिससे साधक का पुनः पतन होता है। वह तम भूखी नागिन के रूप में प्रकट हो किसी-न-किसी विष का संचार साधक में कर उसे डस लेती है। और इस प्रकार उसे मूर्छित अथवा उन्मत्त बना उसका भक्षण करने लगती है। क्यों?

पहले आप विचार कीजिये कि श्रीगुरु ने आपको क्या दिया? एक चुम्बक और एक कुण्डाला और आपसे कहा कि इस कुण्डाले को इस चुम्बक में जप-गति से गोल-गोल घुमाते रहना। परिणाम क्या हुआ? उसमें से विद्युत् की चिनगारी निकली, जिसने आपको काटा व जलाया और धक्का मारा जैसे विद्युत् का 'शॉक' लगता है। आप दौड़े-दौड़े आये, तो श्रीगुरु यही कहेंगे—'हाँ, ठीक है। ऐसा ही होता है।' मन्त्रार्थ-रूपी चुम्बक में मन्त्र-चैतन्य-रूपी कुण्डाला फिराने से नागिन (कुण्डलिनी) सोती हुई जाग जाती है। तो बतलाइये, आपत्ति बढ़ी या घटी? दीक्षा तो आपत्ति बढ़ाने के लिये नहीं ली जाती। अब क्या किया जाय?

शक्ति को पचानेवाला शक्ति-पाश से छटता हुआ सच्चा शाक्त

पहली आवश्यकता कवच की है । ठीक जैसे विद्यत के तारों के चारों तरफ रबर का लिफाफा लगाया जाता है, उसी तरह इन दो गतियों को कुण्डाले में से पृथक् - पृथक् निकाला जाय—संयुक्त होते ही आग झरेगी ।

दूसरी आपत्ति यह है कि कवच जहाँ कहीं भी कमजोर होगा, वह विद्युत्-गति भूमि-केन्द्र की तरफ बहेगी । इसी को 'अर्थिङ्ग' कहते हैं । इसी में वैषयिकता का अनुभव उपासना में होता है । इसी में तार गरम होकर स्वयं जल जाता है और यदि श्रीगुरु ने कोई फ्यूज बीच में रख दिया हो, तो वह नष्ट हो जाता है । और दूसरा फ्यूज माँगने से कभी मिले या न मिले, यथा कृपा । जब तक विद्युत्-गति का उपयोग न हो, शक्ति-जनक यन्त्र 'डायनमों' को घमाते रहने से कोई लाभ नहीं । इसीलिए 'गुरु-पादुका में उसका संचय किया जाता है । यह कोष (एक्यूमुलेटर) है लेकिन इसका ठीक-ठीक उपयोग तो विश्व-क्रियार्थ ही हो सकता है, जैसे विद्युत् का उपयोग प्रकाश उत्पन्न करने के लिए बल्ब में दीप्ति प्रकट कर होता है । इसका उपयोग अन्य तत्व बीज-विस्फोट में भी किया जा सकता है, जैसा कि विद्युत् से अणु (अटम) बम फोड़ा गया था ।

शक्ति-जनक यन्त्र से उत्पन्न हुई 'शक्ति' को जब तक विश्व-क्रियात्मिका 'शक्ति' में हम हवन नहीं कर सकते, तब तक वह हमारे ऊपर चोट करेगी । उसका विश्व-क्रिया में उपयोग होने लगने से प्रकाशादि अनेक तत्व विश्व-कल्याणार्थ उसमें से प्रकट होंगे । यह सदा सिद्ध होंगे । इन्हें स्वीकार कर उसके बदले में विश्व-क्रिया आगे अधिक सिखाने का मार्ग खोल देगी और इस विश्व-शाला में ऊपर की कक्षा में भरती कर उस व्यक्ति की कोटि को बदल उसका उद्धार करेगी, परन्तु प्रश्न तो यह है कि लेने के लिए सब करते हैं, देने के लिए कौन करता है ? लेने के लिए सब 'स्वाहा' करते हैं । सब खोकर अपने को भी देने को कौन करता है ? उपासना से संचित 'शक्ति'-द्वारा प्राप्त सिद्धि से पर-सेवा कर, तज्जनित आशीर्वाद को भी विश्व-क्रिया में कौन हवन कर समर्पण करेगा ? यदि करे, तो शक्ति पच सकती है, अन्यथा नहीं । अन्न अग्नि में पका कर न खायें, तो पेट दुखता है । वैसे ही 'शक्ति' पराहन्ताग्नि में न पकाई जाय, तो नाना प्रकार के विषय, मूर्छादि उत्पन्न कर पाश में बाँध पशु बनाती है । इसीलिए शाक्तो, सावधान !

इसी कारण साधक को मन्त्र-साधन के पूर्व श्रीगुरु का प्रथमोपदेश यह होता है कि **'पराहन्ता-मये वह्नौ होम-स्वीकार-लक्षणम्'** । 'शक्ति' को प्रकट करनेवाला 'शाक्त' नहीं, परन्तु उसे पचानेवाली महान् चित्-क्रिया को सम्मुख कर 'शक्ति' को पचानेवाला शक्ति-पाश से छुटता हुआ सच्चा 'शाक्त' ही कौल साधक है ।

विषय-परिणमन

इस भव-सागर में सात फेरों में घुमा-कर डुबोनेवाली भंवर का अविद्यात्मक वर्णन भगवान् कृष्ण ने गीता में किया है । यथा—

१ सङ्गात् सञ्जायते २ कामः, कामात् ३ क्रोधोऽभिजायते, क्रोधात् भवति ४ सम्मोहः, सम्मोहात् ५ स्मृति-विभ्रमः, स्मृति-भ्रंशात् ६ बुद्धि-नाशो, बुद्धि-नाशात् ७ प्रणश्यति ।

इसी भँवर का विद्यात्मक वर्णन पाँच भावों में किया जा सकता है । यथा—

१ सङ्गात् सञ्जायते २ शक्तिः, शक्त्या ३ भावो विवर्धते, भावात् भवति ४ विज्ञानं, विज्ञानात् ५ श्रेयमाप्नुयात् ।

श्रेय सङ्ग और प्रेय सङ्ग

इस प्रकार सङ्ग ही श्रेयत्व तथा हेयत्व का देनेवाला होता है। बड़े लोगों ने यही कहा है कि विषय (प्रेय) सङ्ग हेयत्व को देता है और श्रेय सङ्ग (सत्सङ्ग) श्रेयत्व को देता है, परन्तु कहा हुआ तो पुस्तक या कान ही में रह जाता है।

जिसे हम प्रिय कहते हैं, वह वस्तु नहीं है। प्रिय एक स्वाद का नाम है। स्वाद प्रिय लगता है, वस्तु नहीं क्योंकि प्रियत्व रुचि-भिन्नता से होता है। किसी को मिष्ट प्रिय है, तो किसी को खट्टा व तीखा। प्यारी-से-प्यारी वस्तु को काल खा जाता है। तब उसका भोक्ता दूसरी वस्तु को खड़ी कर उसमें से वही या उससे अच्छा स्वाद पाने की कोशिश करता है।

मन का सर्ग वस्तु से नहीं होता, स्वाद से होता है। स्वाद को उत्पन्न करनेवाली इन्द्रिय है। रुचि के अनुसार स्वाद को इन्द्रियाँ भोगती हैं तथा मन उसमें सुख-दुःख का अनुभव करता है। मन इन्द्रियों द्वारा रुचि-कर वस्तु को भोगने की इच्छा करता है। इसी को स्वाद कहते हैं।

यदि इन्द्रियाँ न हों या अशिक्षित हों या रोगी हों, तो स्वाद न आयेगा अथवा बिगड़ा हुआ होगा। इन्द्रियाँ स्वाद को भोगती हैं परन्तु उस स्वाद को मन में पहुँचाने का मार्ग 'भाव' है। जिस भाव से स्वाद लिया जाये, वैसा ही 'भोग' मन में उत्पन्न होगा। नैवेद्य का स्वाद दूसरा ही होगा, चोरी अथवा लूट से प्राप्त वस्तु का स्वाद दूसरा, कमाये हुए भोजन का स्वाद दूसरा, भिक्षा अथवा दान से प्राप्त वस्तु का स्वाद दूसरा। भिन्न-भिन्न भावों से प्राप्त एक ही वस्तु का भिन्न-भिन्न स्वाद होगा। इसमें काल और स्थान की भिन्नता भी अपना असर डालेगी।

प्रेम में से उत्पन्न हुआ स्वाद भोग-भाव से मन में जाकर 'काम' की उत्पत्ति करता है। यही व्यक्ति को 'प्रणश्यति' की ओर ले जाकर उसके पतन का कारण होता है। यही स्वाद श्रेय दिशा में से यदि जागे, तो वह भोग्य-भाव से नहीं ग्रहण किया जा सकता, क्योंकि भोग में भक्षण - भाव है, व उसमें प्रेरणा करनेवाली जिह्वा है। श्रेय का स्वाद जिह्वा में नहीं पाया जा सकता, क्योंकि वह इन्द्रियातीत है।

एक कुत्ता जो अपने मालिक की रखी हुई रोटी की रखवाली करता है, उस रोटी को स्वयं खा सकता है। यदि खाए तो वह भोक्ता बनकर डण्डे की मार का अधिकारी होगा, परन्तु रखवाली करने की प्रेरणा उसे उसकी इन्द्रियों से नहीं मिलती। सेवा का भाव कुत्ते में कहाँ से जागता है? जब तक मालिक की भावी शाबाशी की आशा व कल्पना में रोटी के स्वाद की अपेक्षा स्वामी की सेवा का स्वाद अधिक नहीं होगा, तब तक वह कुत्ता अपने को भोग से रोक नहीं सकता। उसमें अपने आपको रोकने की शक्ति कहाँ से आती है? स्वामी को प्रसन्न कर उसके ही अधिकाधिक बनते जाने के भाव द्वारा।

मन के सेवा-स्वाद को ग्रहण करने में भोग-शक्ति पतन का हेतु है। अपने को रोककर स्वयं केन्द्र न बन श्रेयत्व-मय प्रभु-भावना को केन्द्र बनाकर उसके बनने के प्रयत्न में जो संरक्षिणी 'शक्ति' प्रकट होती है, वही पावन का हेतु है। शास्त्र में कहा है कि--

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतत्, तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयः वृणीते, प्रेयो मन्दो योग-क्षेमात् वृणीतः ॥

सारांश यह कि प्रेय सङ्ग, जिससे हमें वस्तु प्यारी लगती है, वह हमारे मन में भोक्ता - केन्द्र बनाकर 'काम' को उत्पन्न करता है, और यह 'काम' हमारा भक्षण कर हमारा पतन करता है। श्रेय सङ्ग को, जिससे हमें किसी भी वस्तु में श्रेयत्व दिखता है, केन्द्र बनाने से वह हमें केन्द्रत्व-पाश से छुड़ा कर हमारा संरक्षण करनेवाली 'शक्ति' उत्पन्न करता है, जो हमारी सद्भावना की वृद्धि करती है और

हमें अधिक उच्च शिक्षण का अधिकारी बनाकर नवीन रूप से गुरु-कृपा को प्रकट कराती है। यही आगे की सीढ़ी 'दीक्षा' का स्वयं कारण भी बन जाती है और व्यक्ति का उद्धार कराती है।

यहाँ एक बड़ा भारी प्रश्न उत्पन्न होता है। श्रेय सङ्ग से प्रकट हुई 'शक्ति' विद्यात्मिका होने से उसका सङ्घर्षण अविद्या से होता ही रहता है। विद्या पढ़ी, तो परीक्षा दो, नहीं तो मार खाओ, फिर पढ़ो। प्रलोभन डग-डग पर सता कर परीक्षा लेते ही रहते हैं। मात्र श्रेयत्व, सङ्ग-जनित 'शक्ति' परीक्षा में उत्तीर्ण होने का कारण नहीं बनती। उस 'शक्ति' को अविद्या चाट जाती है। मन्त्र व सत्सङ्ग दोनों में से प्रकट हुई 'शक्ति' उन्मादक होती है और भोग को आकर्षित कर उसकी अनुकूलता में स्वयं अन्तर्धान व लुप्त हो जाती है।

क्या इस व्यर्थ जाते हुए खर्च में से बचने का कोई उपाय है? कोई भी सत्-कार्य सम्मुख हो, अथवा करने जाते ही विघ्न ही नहीं, आपत्ति खड़ी होती है और होती ही जाती है। उसमें से गुरु-कृपा ही एक बचानेवाली है, यह अवश्य मानना ही होगा परन्तु उस कृपा को प्रकट कैसे किया जाय व उसका पात्र कैसे बना जाय व तदर्थ क्या प्रयत्न किया जाय? यह एक बड़ा भारी प्रश्न रह जाता है।

जीभ अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकती, प्रेय अवश्य मीठा लगा ही करेगा, मीठे में आकर्षण अवश्य होगा ही। यही तो अविद्यात्मक स्वभाव है। यह हमसे कैसे छोड़ा जा सकता है? यह तो सारे विश्व में व्याप्त है। हमारा मन इस स्वभाव को न समझ सकने के कारण अपने हेय भावों के केन्द्र में फँस कर भक्षिणी भोग-गति के तड़ाके में आकर अपने पतन का अनुभव कराता है। यही स्वभाव हमारी सत्सङ्ग-जनित 'शक्ति' की परीक्षा करता है। उस 'शक्ति' में भी वह अवश्य है। इसलिए वह कभी भी करवट बदलकर लुप्त हो जा सकती है। इस स्वभाव को समझना ही साधक की साधना का एक-मात्र दिव्य फल है।

समत्व ही योग की चाबी है

अविद्या का यह नियम है कि वह कभी अकेली नहीं रहती, न कभी विद्या अकेली पाई जाती है। हमारे लिए दोनों में से एक का लुप्त हो जाना आपत्ति-मय होगा। उपनिषत् में कहा भी है कि दोनों में से किसी एक की उपासना की जाय, तो व्यक्ति अँधेरे में जा गिरता है। दोनों साथ रहते हुए भी किसी एक का मात्राधिक्य हो जाए, तो भी पतन होगा। दोनों का समत्व ही योग की चाबी है। इसी को भगवान् कृष्ण ने **'समत्वं योग उच्यते'** कह कर बतलाया है।

समत्व क्या है और विषम को सम कौन व कैसे कर सकता है? यही बड़ा भारी प्रश्न है। विषमत्व ही अजीर्ण का कारण है और समत्व ही सुन्दर पुष्टि-कर पाचन है। विषयों के कारण रूप, इन्द्रिय व उसके विषयों के सङ्ग को हम त्यागने जायँ, तो भी अँधेरा ही मिलेगा।

कुत्ते का उदाहरण लेकर फिर देखें, तो यही प्रतीत होगा कि उसे भूखा मार कर ईमानदार और स्वामि-भक्त नहीं बनाया जा सकता। मात्र भय से सुधार नहीं होता। ईमानदारी व सेवा के श्रेयत्व का कारण बताकर उसमें प्रीति जगानी चाहिए। जिस प्रकार वह कुत्ता रोटी के सामने ही उसका भोक्ता होता है और उसी के सामने उसका रक्षक भी होता है, उसी प्रकार मानवी मन भयङ्कर प्रलोभन के सामने रहते हुए भी, भोग से निवृत्त रहकर, उसका मालिक के लिए कुछ उपयोग हो, इस इच्छा से उसका रक्षक भी होता है। यही अभ्यास 'कौल'-मार्ग है। इसी कारण वह योग से अधिक कठिन है। कहा है कि **'कौलो धर्मो परम गहनो योगिनामप्यगम्यः'**।

पशुत्व, वीरत्व एवं भाव-शुद्धि

विषयों को दूर नहीं किया जा सकता। न तो कोई आवश्यकता ही है, परन्तु अपना भाव बदलना चाहिये। विषयों के सम्मुख होते ही उन्हें भोगने लग जाना ही पशुत्व है। उनका अपने केन्द्र से सम्बन्ध न होने देते हुये, विश्व-केन्द्र से जो सम्बन्ध हो, उसका अध्ययन कर विश्व-कल्याणार्थ जो उपयोग किया जा सके, उसी में वीरत्व समाया हुआ है। वही विषय, जो मारक व भक्षक था, इस दृष्टि-फेर से मोचक व संरक्षक हो जाता है।

यह भाव–यह दृष्टि कैसे बदले ? प्रेय को हम श्रेय कैसे बना सकते हैं ? सरस को निरस कैसे कर सकते हैं ? यहाँ गोपियों के चित्तस्थ विषय-भाव-पाचन का दृष्टान्त अनुकूल हो सकता है।

एक अणु का भी अध्ययन करें, तो प्रतीत होगा कि दो विपरीत गतियाँ उसके अन्दर परस्पराकर्षण-भाव में स्थित हैं। एक केन्द्र-गति, दूसरी उसके आस-पास फिरनेवाली परिधि-गति। अणु की इन दोनों गतियों को परस्पराकर्षण में सन्तोष नहीं होता। दोनों किसी तीसरे को आकर्षित करना चाहती हैं। यही अण्वाकर्षण आंग्ल भाषा में 'एफ़िनिटी' कहलाती है।

भू-गर्भ-स्थित चुम्बक-गति एक बात, भू की ऊपरी सतह पर प्रदक्षिणा-मय गोल गति–यह दूसरी बात और अणु के पारस्परिक परिणमन की गति, तीसरी बात। उसी प्रकार मानव - गति केन्द्र में अहंयुता है, परिधि में स्वात्म-संरक्षण-मयी है और पर-सम्बन्ध में भक्षिणी है। इस तीसरी गति को मार्ग बतलाने के लिए स्वाद की आवश्यकता पड़ती है कि कहीं विष-दायिनी क्रिया उत्पन्न न करे। इसी का दुरुपयोग 'भोग' है। यह मात्रा के चूक जाने से जगता है। समत्व में इसका शमन हो जाता है। मिठास का पक्षपाती मन इस जाल को स्वयं रचकर उसमें फँस जाता है।

जिस प्रकार अणु का विस्फोट कर उसकी गति का अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार अपने विचारों का भी विस्फोट किया जा सकता है, जिससे पूर्वज विषय-सङ्ग आप ही छूट जाते हैं। परन्तु उसमें से जागती हुई 'शक्ति' पुनः फँसा लेती है। विस्फोट-जनित 'शक्ति' की इस आदत को नागिन की उपमा दी जाती है। नागिन के मुख में से यदि अण्डे को छुड़ाया जाय, तो वह उसे फिर मुँह से पकड़ लेगी और यदि अण्डा पककर फटे, तो निकल भागते बच्चे को नागिन खा जायेगी।

हमारे मन की स्वाद-शक्ति इसी प्रकार हमारा पीछा कर हमें पुनः फँसाती है। इसी कारण मन्त्र व दैवत-जनित शक्तियाँ भी आपत्ति का कारण हो जाती हैं। ज्यों-ज्यों आकर्षणों से भागने का हम प्रयत्न करेंगे, वे अधिक जोर से हमला करेंगे। तब कैसे बचा जाय ? आकर्षण से बचने का एक ही उपाय है। उस भूखी नागिन की क्षुधा सन्तुष्ट की जाय।

इसी दृष्टि से कुछ महा-पुरुषों ने कुण्डलिनी का उत्थान कर, इस अविद्या-मयी नागिन को विद्या-मय सहस्रार में ले जाकर वहाँ से चिद्रावामृत का चोषण कराकर उसकी क्षुधा - तृप्ति का मार्ग बतलाया है। परन्तु किसी भी प्रकार की अविद्या किसी भी प्रकार की विद्या-गति को किसी भी अयुक्त मात्रा में पाकर कभी सन्तुष्ट न होगी। इसलिए विद्या-अविद्या-मय सम व युक्त भाव में जीवन-मूल, केन्द्र-परिधि व पर-परिणमन—तीनों को सम्भालने वाला 'दैवत वीज' तन्त्रशास्त्र में बतलाया गया है।

'दैवत वीज' के विस्फोट में से जागती हुई केन्द्र-शक्ति अपनी केन्द्र-शक्ति से भिन्न होगी और सर्व विषय उसमें पचकर जीवन - प्रद बनेंगे। अहन्ता-पात्र भी धीरे-धीरे परिणत होकर उसी की दया से पराहन्ता-पात्र बनेगा। अहन्ता व पराहन्ता के किसी अंश में प्रकट होते हुये समत्व को भी योग कहा जा सकता है।

आपत्ति तो यहाँ भी है। जब तक अहन्ता रहेगी, वह उस बीज-विस्फोट से प्रकट होती हुई 'शक्ति' का शिकार अवश्य बना करेगी। इससे बचने के लिए उस 'शक्ति' का हवन उसी बीज-जनित क्रिया में कर देना पड़ता है। नहीं तो व्यक्ति को साधना-क्रम में सफलता मिलना प्रायः असम्भव है।

अविद्यात्मक विस्फोट एवं सृष्टि-कर बीज का विस्फोट

विश्व-बीज-शास्त्र (कॉस्मिक इम्बॉयोलोजी) परम गहन शास्त्र है। इसकी चाबी विश्व-नायक जगत्-कर्ता के हाथ में है, जिनकी मर्जी बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, तो नक्षत्र व सूर्य कैसे डिग सकें! इस शास्त्र को सीखनेवाले अपने में ही प्रयोग कर शिक्षा पाते हैं। उन्हें चित्-प्रकृति में गड़बड़ करने की अनुमति नहीं दी जाती।

उदाहरणार्थ अमेरिका ने 'यूरेनियम' का अणु-विस्फोट किया। पहले तो यह बीज-विस्फोट नहीं था। दूसरे अभी वैज्ञानिकों को किसी भी अन्य अणु की शक्ति नहीं प्राप्त हुई है। तीसरे 'यूरेनियम' की श्रृङ्खलाकृति प्रतिक्रिया-मय विस्फोट में से जागी हुई उष्णता व काश-प्रकम्प रेडियो (एक्टिविटी) आदि शक्तियों का भोग बनते हुए विश्व को हम देख रहे हैं। विश्व क्षुधा-पीड़ित, दुखी, दरिद्री, ईर्ष्या-ग्रस्त, परस्पर-क्षय-कारी हो रहा है। वर्षा ने अपना नियम सम्पूर्ण पृथ्वी में छोड़ दिया है। अणु-विस्फोट-जन्य ये शक्तियाँ मनुष्य को कब व कैसे पच सकती हैं? जैसे साधक व्यक्ति-शक्ति को पचा सकता है, वैसे ही अन्ताराष्ट्रीय संघ अथवा एक राष्ट्र भी उन्हें पचा सकता है। 'शक्ति-पाचन' ही शव को शिव बनाता है। इसका रहस्य क्या है? बीज! अणु को नहीं तोड़ना चाहिये। वह अविद्यात्मक विस्फोट का देनेवाला ही होगा।

चिद्-युक्त अणु-सङ्घ जो बढ़कर उगे व सृष्टि-कर हो, ऐसे बीज का विस्फोट करना सीखा जाय, तो सत-युग अभी सामने ही है। जीवन का इतने जोर से आज भी प्रवाह जग सकता है कि कलि-युग की आयु यहाँ व अभी भस्म हो जाये। परन्तु पात्र कौन है ? सब अपने-अपने स्वाद व स्वार्थ में ही मस्त हैं। 'शक्ति' मिलेगी, तो एक दूसरे को सता कर कलि-युग की आयु को और अधिक ही बढ़ायेंगे!

एक विस्फोट 'काम-बीज' का भगवान् कृष्ण ने अपनी बाँसुरी से किया था, जिसके प्रभाव से कुछ काल तक सूर्य-मंगल-ग्रह-सहित सम्पूर्ण प्राणी आनन्द में स्तब्ध हो गये थे और दिन व रात दोनों बन्द हो गये थे। काल का स्तम्भन हो गया था और फिर नवीन काल का आरम्भ हुआ था। वैसे ही किसी-न-किसी लक्ष्य से, किसी-न-किसी बीज का विस्फोट कर 'काल' अपना परिणमन करता है।

इस बीज-विस्फोट को करनेवाला कोई विशेष महा-व्यक्ति चुना जाता है, जिसे अवतार कहते हैं। उसके बीज-विस्फोट के महा-परिश्रम में 'शक्ति-पाचन' की सम्पूर्ण कला गुप्त रहती है। इस कला में भगवान् शिव का भैरवाङ्ग अत्यन्त गुप्त रूप में छिपा हुआ है। इसमें से विश्व-संचालिनी कला (कॉस्मिक इण्डस्ट्री) का कौशल प्रकट होकर डमरु के ताल व ताण्डव नृत्य के ता-थैया के रूप से भक्तों को भाव-पूर्ण कर उनका कल्याण करता है। इस भैरवाङ्ग के समझने के पात्र बनने का मार्ग 'भैरवोपदेश' में किसी अंश में बतलाया गया है।

'विद्या' और 'अविद्या' का साथ-साथ अध्ययन

इस विश्व में व्यक्ति को विद्या और अविद्या दोनों पढ़नी पड़ती है। दोनों का पृथक्-पृथक् उपयोग व यथा-काल युक्त रूप में परस्पर सम्मिलन करना पड़ता है। विद्या पढ़ानेवाले को 'श्रीगुरु' कहते हैं, अविद्या पढ़ानेवाले को 'माया'। अविद्या पढ़ने की क्रिया माया की सहायता से व्यक्ति को प्राप्त होती है। इसीलिये उसे भी श्रीगुरु का एक स्वरूप ही मानना होगा। 'श्रीनाथादि-गुरुत्रयं' में ह्रीं-नाथ भी हैं

हो। आगे जाते हुए व्यक्ति की परीक्षा माया व गुरु दोनों लेते हैं। इस कारण श्रीगुरु में अवश्य माया का अंग रहता ही है।

विद्या आपत्ति-निवारणार्थ पढ़ी जाती है। आपत्ति 'काल' का धर्म है। 'काल' जब अपने प्रतिकूल स्वरूप से व्यक्ति के सम्मुख होता है, तब उसे आपत्ति कहते हैं। उसे पुनः अनुकूल बनानेवाली 'विद्या' है। यह श्रीगुरु के पास मिलती है।

अनुकूला प्रकृति भी 'काल' का ही एक अङ्ग है। आज सुख सम्मुख होता है, वह काल नहीं रहेगा। सुख में भोग उत्पन्न करानेवाली माया है। वह अविद्या गति से मोह को उत्पन्न करा कर व्यक्ति को फँसाती है। श्रीगुरु व्यक्ति को आपत्ति से छुड़ाते हैं। माया आपत्ति में डालती है। काल के दोनों—अनुकूल व प्रतिकूल अङ्ग—इस प्रकार एक के बाद दूसरा व दूसरे के बाद फिर पहला—इस क्रम से खेला करते हैं। आपत्ति के मूल से छुड़ाने की शक्ति, जब विद्या में नहीं है, तब अविद्या में कहाँ से हो? आपत्ति दूर होकर काल के चक्कर के प्रभाव से पुनः नई आपत्ति का रूप धारण करती है। यदि ऐसा न होता, तो श्रीगुरु और विद्या से ही काम चल जाता। पुनः नई आपत्ति आती है, इसलिए तीसरे की आवश्यकता पड़ती है। वही 'पराहन्ता' है। इसमें विद्या, अविद्या, काल-गति व तीनों का युक्तायुक्त निर्णय, तथा व्यक्ति द्वारा उसका पाचन व उन्नति सभी समाये हुये हैं।

विद्या शाला में पढ़ी जाती है, अविद्या शय्या पर। दोनों का संयोग कहाँ होता है? और उसे सिखानेवाला कौन है?—चित्-क्रिया।

पढ़ी हुई विद्या की परीक्षा ली जाती है। आपत्ति ही परीक्षा का मन्दिर है। इसके दो स्वरूप हैं—१ कष्ट-मय आपत्ति, जैसे रोग व दारिद्रय और २ सुख-मय आपत्ति, जो शीघ्र ही दुःख को जनेगी, जैसे विषय-प्रलोभन, फँसावट व पतन। प्रत्येक अनुकूलता चिकनी भूमि की तरह व्यक्ति को फिसला कर गिरा देती है। प्रत्येक प्रतिकूलता रुकावट की अधिकता सम्मुख कर उसे मार्ग-रहित बना, पूर्ति के अभाव में अग्नि उत्पन्न कर इसमें व्यक्ति को सेंकती है व दाह उत्पन्न करती है। यही भव-रोग है। इससे बचने की दवा प्रभु-प्रेम है और वह दवा श्रीगुरु-रूपी वैद्य के पास मिलती है। परन्तु उसका सेवन और पथ्य माया के घर में करना पड़ता है, श्रीगुरु के घर में नहीं। जैसा कि गुजराती गजल में कहा है—

> प्रभू प्रेम भव रोगनी सद् दवा छे। पिये रोग थी छूटशे ए दुवा छे ।। प्रभू १ ।।
> महा योगिने पण नड़े आ वला छे। तपस्वी न ज्ञानी, जुलुम नीवला छे ।। प्रभू २ ।।
> अजर न अमर देव माया न छोड़े। सदाते तुफाने चढेली हवा छे ।। प्रभू ३ ।।
> दया श्री प्रभूनी, महा -ज्ञान बूटी। बनेली दवा बस, अकेली दवा छे ।। प्रभू ४ ।।
> विरद श्री हरीना रसे मेल वेली। गुरू वैद पासे जड़े आ दवा छे ।। प्रभू ५ ।।
> अरे रोगियों, विश्वना श्रीगुरुनी । शरणमा मिटे रोग, नीरोग वा छे ।। प्रभू ६ ।।
> यही वैद नातो, प्रखर दुःख - रोगे। मुझाई मरे जीव, झेरी हवा छे ।। प्रभू ७ ।।
> अमर जो थवूँतो, दवा ढूंढ़ मोती। प्रभू प्रेम अमरित अजूबी दवा छे ।। प्रभू ८ ।।

श्रीगुरु के पास से औषधि लेकर माया के घर में सावधान हो परम संयम-युक्त होकर शय्या पर सतत उसका सेवन कर रोग-मुक्त होकर साधक में नवीन कर्तव्य की जाग्रति का अनुभव होता है।

नीरोग व्यक्ति का क्या कर्तव्य है? परिश्रम, कमाई व व्यय। आप कहेंगे कि यही तो रोग था और फिर भी रहा, तो निवृत्त क्या हुआ? ठीक है। पहले रोगी जीवन था, अब रोग से निवृत्त हुआ। व्यक्ति अपने को केन्द्र मानकर भोग-रूपी आपत्ति में पड़ता था। अब उसका केन्द्र

बदल गया। कर्ता-धर्ता वह स्वयं नहीं रह गया। वह विश्व-सञ्चालिनी चित्-क्रिया के प्राकट्य का एक पात्र बन गया। परिश्रम करता है, परन्तु अपने लिये नहीं। कमाता और खर्च भी करता है, परन्तु अपने लिये नहीं। आपत्ति का सामना करता है, परन्तु अपनी शक्ति से नहीं।

विद्या और अविद्या दोनों में से प्रकट हुई 'शक्ति' पराहन्ता में ही पचती है। तभी व्यक्ति का परिणमन होकर वह पात्र बनता है। जब तक श्रीगुरु व माया का एकी-करण नहीं होता, तब तक यह सम्भव नहीं है। इस मार्ग की सीढ़ियाँ (सोपान) गिनें तो, वे क्या हैं और कितनी हैं?

पहली सीढ़ी

सुख के आपत्ति-जनक होने के कारण, उसे आपत्ति के जितना ही भयङ्कर मानना, जानना व अनुभव करना पहली सीढ़ी है। इसीलिये कहा है--

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय। जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय?

सुख में प्रभु का स्मरण क्यों नहीं होता? क्योंकि माया के प्रभाव से उसमें कोई आपत्ति या रुकावट नहीं दिखती। उसे दिखाने के लिये भी श्रीगुरु की आवश्यकता पड़ती है।

'आ सुख छे पण दुःख-रूप सुत नो बापू रिपू धारेजा।'

सुख को आपत्ति जान, उसका त्याग बहुधा 'वैराग्य' कहलाता है, परन्तु यह श्मशान-वैराग्य है। भोग लिए जाने से रोग की निवृत्ति नहीं हो सकती। सुख में रहकर, उसकी मार खाते हुए सुख व दुःख के समत्व को निभाने रहने में ही परम वीरत्व समाया हुआ है। यही सच्चा वैराग्य है। इसी कारण कहा है—'**वैराग्यमेवाभयम्**।' दारिद्रय से भागकर छूटा हुआ त्यागी साधु, महल में जाते थर-थर काँपता है, कहीं फँस न जाय! उसका कहीं पतन न हो जाय! सुख की मार से अजीर्ण हो वमन न हो जाये! कहीं भव-रोग बढ़ न जाये! सच्चा वैराग्य जिसे है, वह प्रलोभन की मार का अभ्यासी होता है। वह वीर है, उसे डर नहीं। वह सुख-दुःख दोनों का सामना कर सकता है। इसीलिए श्रीगुरु माया के हाथ से साधक को 'शक्ति' पिलाकर उसे गिरने का अभ्यास पहले कराते हैं, जिससे कि वह फिर उठकर युक्तत्व को कभी भी छोड़े बिना 'शक्ति' का पान स्वयं युक्त मात्रा में कर, अमर व अच्युत किसी अंश में बन सके। इसी शक्ति-पान के अभ्यास का यह वर्णन है—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भू-तले। तदुत्थाय पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

सुख की मार को सहन करने का अभ्यासी न तो राग-रहित होगा, न वीत-रागी। वीत-रागी तो बुड्ढा भी कुछ अंश में हो सकता है। राग-रहित भी अपने मन को कड़ा बनाकर, इन्द्रिय का द्वार बन्द कर थोड़े काल के लिए कोई भी हो सकता है, परन्तु काल इन दोनों को पतन के मार्ग में पुनः प्रेरेगा। काल के तड़ाके से बचने का मार्ग 'वैराग्य' ही है। इसमें विशेष राग श्रीप्रभु के चरणों के प्रति उत्पन्न होता है। जिसकी जितनी धारणा हो, श्रीगुरु के सम्मुख प्रयोग करके देख सकता है कि प्रत्येक इन्द्रिय-गत स्वाद (भोग) में, सुख माननेवाले मन द्वारा, उस भोग के अस्तित्व में, उस भोग-रूपी स्वाद की फँसावट को, श्री प्रभु-चरणों में सच्चे चित्त से अर्पण करने से अपने मन में श्री-प्रभु-चरणों में कितना विशेष प्रेम जागकर, पुष्ट हो, सुख-दुःख दोनों में उसका संरक्षक होता है। यह तो करके देखने की बात है, कहने-सुनने की नहीं। यदि न सधे तो पतन होगा, परन्तु भय से मार्ग-च्युत होना कायरता है, वीरत्व नहीं।

दूसरी सीढ़ी

कर्त्तव्य करते हुए उसके 'फल के भोग की इच्छा का त्याग' दूसरी सीढ़ी है। चाहे फल न हो सही, हम तो फल की इच्छा से बीज अवश्य बोते ही रहेंगे मालिक। कभी तो दया की नजर करेगा ही।

'कर्नाटक', 'गुजरात' एवं 'हिमाचल प्रदेश' से आवाहन

बिहार में आयोजित 'शाक्त-साहित्य-प्रदर्शनी' एवं 'शाक्त-सम्मेलन' के समाचार से उद्‌बोधित होकर 'चण्डी' के विद्वान् लेखक श्री श्रीकृष्ण पिचूमणि अयङ्गार ने हमें सुझाव दिया कि कर्नाटक में उक्त प्रकार का आयोजन करने हेतु शृङ्गेरी के 'श्रीशारदा-पीठं' के जगद्‌गुरु श्रीशङ्कराचार्य जी से सहयोग हेतु सम्पर्क स्थापित किया जाना चाहिए। इस पर हमने उक्त पीठ को पत्र लिखा, जिसके उत्तर में श्री शंकराचार्य जी के निजी सचिव श्री सी० वी० गिरिधर शास्त्री जी का कृपा-पत्र दिनांक २०-११-८६ प्राप्त हुआ। वह यहाँ शब्दशः उद्‌धृत है—

'.....पटना में शाक्त-साहित्य-प्रदर्शनी और बिहार शाक्त सम्मेलन—दोनों के लिए प्रयत्नशील हैं, इस बात को जानकर श्री जगद्‌गुरु जी महाराज सन्तुष्ट हुये। वे चाहते हैं कि यह कार्य-क्रम सुचारु रूप से सम्पन्न होवे।

दूसरी बात आपने लिखी है कि कर्नाटक में सम्मेलन करना चाहते हैं और उसमें जगद्-गुरु जी महाराज की अध्यक्षता भी आपको अभीष्ट है। श्रीगुरु महाराज कब कहाँ रहते हैं, कोई निश्चय नहीं। और उनका वहाँ पर अध्यक्ष होना भी मुश्किल है। परन्तु बेंगलोर में हमारा मठ है। उसमें आप लोग शाक्त-सम्मेलन करना चाहें, तो जगह की सुविधा हम दे सकते हैं श्रीजगद्‌गुरुजी महाराज का आशीर्वाद।'

निश्चय ही श्री जगद्-गुरु शंकराचार्य जी महाराज के आशीर्वाद से युक्त उक्त पत्र से अखिल भारतीय शाक्त समाज को बड़ी प्रसन्नता होगी। अब यह कर्नाटक के शाक्त बन्धुओं पर निर्भर करता है कि वे कहाँ तक इतना सक्रिय सहयोग दे सकते हैं कि बंगलोर में स्थित श्रीशारदा-पीठ के मठ में उक्त आयोजन को सम्पन्न किया जा सके। हमें आशा है कि उस क्षेत्र के बन्धु इस सम्बन्ध में अपने विचार एवं सुझाव हमें लिखकर भेजने की कृपा करेंगे। तदनुसार ही कर्नाटक के आयोजन के सम्बन्ध में निर्णय लिया जायगा।

गुजरात के सम्बन्ध में 'चण्डी' के परम हितैषी धर्म-प्राण श्री एन० वी० मेहता का बहुत ही व्यावहारिक अभूतपूर्व प्रस्ताव प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार गुजरात के भड़ौच जनपद में अवस्थित श्री झाड़ेश्वर शिव मन्दिर से ६ कि० मी० की दूरी पर नर्मदा एवं सागर के सुरम्य मिलन-तट पर 'शाक्त-सम्मेलन' का त्रि-दिवसीय आयोजन होना सम्भव है। गुजरात के बन्धुओं से निवेदन है कि इस सम्बन्ध में अपने विचार एवं सुझाव हमें लिखकर भेजने की कृपा करेंगे।

हिमाचल प्रदेश के सम्बन्ध में काङ्गड़ा से १ पं० चन्द्रमणि अवस्थी २ पं० रामप्रसाद शर्मा, मन्त्री, मन्दिर कमेटी काङ्गड़ा, ३ पं० पद्मनाभ त्रिवेदी तथा ४ पं० ओंकार दीक्षित, सचिव श्री चामुण्डा नन्दिकेश्वर मन्दिर द्वारा आगामी ग्रीष्म ऋतु में आयोजन हेतु व्यावहारिक प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं। 'चण्डी' के पाठकों से निवेदन है कि अपने सुझाव हमें लिखकर भेजेंगे, जिससे हम सर्वाधिक उपयुक्त निर्णय ले सकें।

पटना शाक्त सम्मेलन के तारतम्य में 'चण्डी'-कार्यालय' द्वारा **'बिहार में शक्ति-साधना'** नामक पुस्तक प्रकाशित हो रही है। हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि इस प्रकार की पुस्तक अन्य प्रदेशों के सन्दर्भ में भी प्रकाशित हों। अतएव कर्नाटक, गुजरात, हिमाचल प्रदेश के बन्धुओं से निवेदन है कि इस सम्बन्ध में सक्रिय सहयोग देने की कृपा करेंगे। प्रदेश में स्थित देवी-मन्दिरों का सचित्र परिचय एवं स्थानीय दिवङ्गत और वर्तमान शाक्त-साधकों का सचित्र परिचय लिखकर भेजने की कृपा करेंगे, जिससे हम सम्भावित सम्मेलन के अवसर पर उस सबको प्रकाशित कर सकें।

रजि० सं० ३२९६८१।७५] दिसम्बर ८६-जनवरी ८७ [रजि० सं० ए० डी० ६६

अ० भा० शाक्त-सम्मेलन के उपाध्यक्ष
श्री पं० गोविन्दशरण उपाध्याय द्वारा
उद्‌बोधन

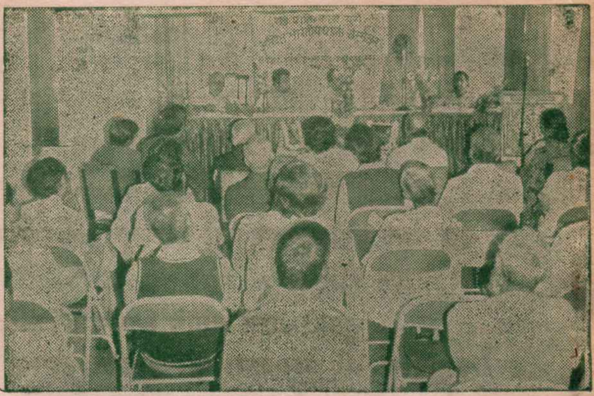

अ० भा० शाक्त-सम्मेलन के मन्त्री
'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल द्वारा
निवेदन

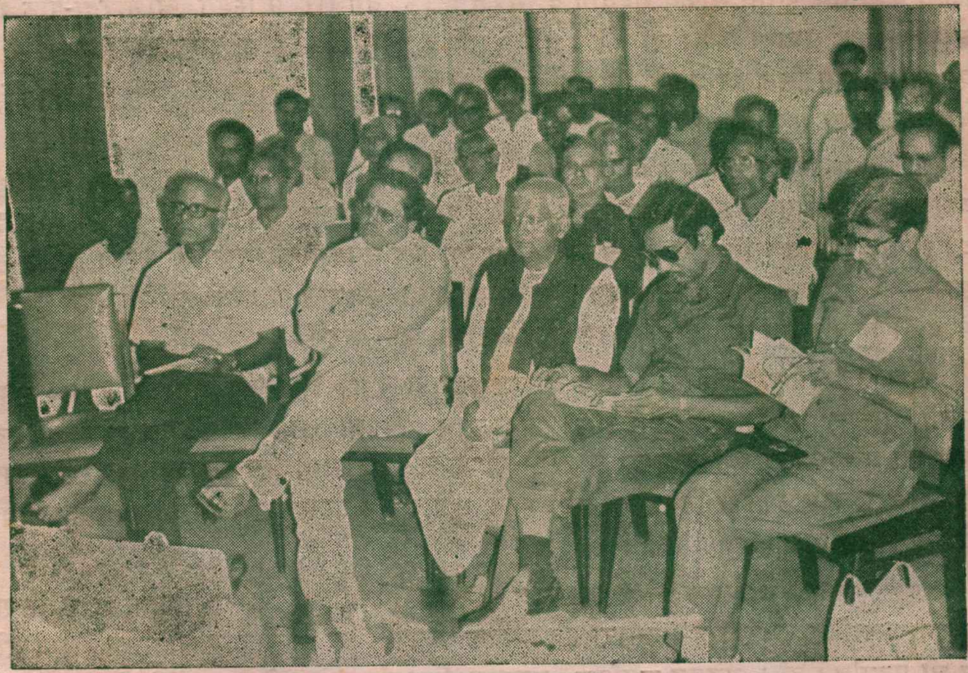

सम्मेलन में उपस्थित शाक्त-बन्धुओं की एक झलक

सम्पादक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, इलाहाबाद—६